# वयण-पमाणत्तं

## ( वचन-प्रमाणत्व )

मंगल आशीर्वाद

परम पूज्य सिद्धान्त चक्रवर्ती राष्ट्रसन्त
श्वेतपिच्छाचार्य श्री 108 विद्यानन्दजी मुनिराज

ग्रंथकार

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री 108 वसुनंदी जी मुनिराज

ग्रंथ -

वयण-पमाणत्तं ( वचन प्रमाणत्व )

मंगल आशीर्वाद

परम पूज्य सिद्धान्त चक्रवर्ती राष्ट्रसन्त
श्वेतपिच्छाचार्य श्री 108 विद्यानन्दजी मुनिराज

ग्रंथकार

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी
आचार्य श्री 108 वसुनंदी जी मुनिराज

सम्पादन - आर्यिका वर्धस्वनंदनी

संस्करण - प्रथम, 2021

प्रतियाँ - 1000

मूल्य - सदुपयोग

**ISBN : 978-93-94199-02-6**

प्राप्ति स्थान

निर्ग्रन्थ ग्रन्थ माला समिति
ई० 102 केशर गार्डन
सै० 48 नोएडा-201301
मो. 9971548889
9867557668

मुद्रण व्यवस्था

अलंकार प्रकाशन

# सम्पादकीय

प्रत्येक वस्तु में सामान्य व विशेष गुण नियम से पाए जाते हैं। संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसमें कोई सामान्य या विशेष गुण न हो। वस्तु का महत्व उसके विशिष्ट गुणों से ही प्रख्यात होता है। पुष्प की प्रसिद्धि सुगंध से, अग्नि की ऊष्णता से, इक्षु की मिठास से, रत्नाकर की रत्नों से, सीप की मोती से, इंद्र की वैभव से, चक्रवर्ती की चक्र रत्न से एवं जल की प्रसिद्धि शीतलता से होती है। यद्यपि इन पदार्थों में अन्य-अन्य गुण व विशेषताएँ भी होती हैं; उनका किसी भी समय अभाव नहीं होता फिर भी प्रधानत्व की प्रधानता को कभी भी लुप्त नहीं किया जा सकता।

आत्मा का विशिष्ट गुण ज्ञान माना जाता है। आचार्य भगवन् श्री कुंदकुंद स्वामी जी ने कहा भी है–**'णाणं णरस्स सारो'** किंतु इसका आशय यह नहीं कि जीव में अन्य गुणों का अभाव है। ज्ञान को विशिष्ट गुण मानने का प्रमुख कारण यह है कि उस ज्ञान के बिना कोई भी आत्मा अपने सामान्य व विशेष गुणों को जानने में असमर्थ होता है। अहित मार्ग का परित्याग व हित की संप्राप्ति भी ज्ञान से ही संभव है। विकृति, विकार, विभाव वा विपरिणमन से बचने में, इन कर्मों से मुक्ति के उपाय में भी ज्ञान को ही प्रमुख कहा है।

यूँ तो ज्ञान प्रत्येक संसारी व मुक्त जीव के पास है। निगोदिया जीव के पास भी नित्योद्घाटित ज्ञान होता है और सिद्धों के पास भी ज्ञान है। ज्ञानादि गुण आत्मा के अनुजीवी गुण हैं, अतः किसी भी जीव में ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य का पूर्णतः वा मूलतः अभाव नहीं होता। हाँ! विभाव परिणमन अवश्य होता है और इनका क्षयोपशम भी यथासंभव प्रत्येक छद्मस्थ जीव के पाया जाता है।

ज्ञान गुण के दो भेद हैं–स्वाभाविक व वैभाविक ज्ञान। स्वाभाविक ज्ञान मात्र अरिहंत व सिद्धों के पाया जाता है और वैभाविक ज्ञान समस्त छद्मस्थों के पाया जाता है। वैभाविक ज्ञान के दो भेद हैं–सुविभाव व कुविभाव। अथवा सम्यक् व मिथ्या। स्वाभाविक ज्ञान तो नियम से स्वभाव रूप होने से सम्यक् ही होता है। वैभाविक ज्ञान में कुमति, कुश्रुत व कुअवधि कुभाव वा मिथ्यारूप ही होते हैं। मति श्रुत, अवधि व मनःपर्ययज्ञान ये वैभाविक ज्ञान सुविभाव ज्ञान हैं। मति ज्ञान व श्रुत ज्ञान परोक्ष ज्ञान हैं। अवधि व मनःपर्यय ज्ञान एकदेश प्रत्यक्ष हैं। केवल ज्ञान सकल प्रत्यक्ष, शुद्ध, सहज, स्वाभाविक, असहाय व अतीन्द्रिय है।

दूसरी अपेक्षा से मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय व केवलज्ञान ये पाँचों ही ज्ञान स्वार्थ कहलाते हैं किन्तु श्रुत ज्ञान में स्वार्थ के साथ परार्थ भी विद्यमान है। स्वार्थ का अर्थ है निज कल्याण या निज प्रयोजन सिद्ध करने में समर्थ। परार्थ का अर्थ है पर हित में निमित्त होना। किसी भी जीव के मति ज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान व केवलज्ञान से हमें कोई लाभ नहीं किंतु जब वे ज्ञान अक्षर रूप परिणत होकर श्रुत रूप प्रवृत्ति करते हैं तभी हम उनसे लाभ प्राप्त कर पाते हैं।

श्रुतज्ञान निःसीम है उसे पूर्ववर्ती आचार्यों ने महासागर वा अरण्य की उपमा दी है। महासागर रूपी श्रुत में अवगाहन कर अपने पाप, ताप व संताप को नष्ट करना, परमानंद को प्राप्त करना तभी संभव है जब उस श्रुत सिंधु में अवगाहन करने की कला प्राप्त हो अन्यथा मिथ्या पुरुषार्थी उसमें डूबकर अपना पतन भी कर सकता है। श्रुत रूपी महा अरण्य में गमन करने वाला व्यक्ति किसी भी पगदंडी या मार्ग पर टहलते हुए ही स्व गंतव्य तक सुरक्षित पहुँच सकता है अन्यथा सुदीर्घकाल तक भटक सकता है अथवा देह पर घावादि भी हो सकता है इतना ही नहीं किसी गर्त आदि में सुदीर्घकाल तक पतित हो सकता है।

वायुयान में बैठकर यात्रा करने वाला कोई प्राणी उस अरण्य को एक साथ देखने में समर्थ होता है किन्तु अनेक पर्वत श्रृंखलाओं, अटवी, कंदराओं

एवं पुरुषों की ऊँचाई से दर्जनों गुनी ऊँचाई वाले वृक्षों के मध्य भटकते हुए राही के लिए स्वयं सुमार्ग खोज पाना दुर्लभ ही नहीं असंभव है। नभ में यान से यात्रा करने वाले यात्री को केवली सर्वज्ञ के समान माना जा सकता है क्योंकि उनके पास समग्र प्रमाण ज्ञान है। उनके निर्देशानुसार जिनवचन के माध्यम से भव अरण्य में भटकता व्यक्ति नय रूपी पगदण्डी का आश्रय लेकर के ही सुमार्ग तक पहुँचने में समर्थ होता है। महासागर में गति करने वाले व्यक्ति के लिए नय नौका के समान है और स्वयं तैरकर पार करना स्वानुभव ज्ञान की तरह है जो स्वयंबुद्धों के पास होता है।

प्रत्येक चक्षुइंद्रिय धारक जीव के पास दो नेत्र होते हैं वह इस बात का प्रतीक हैं कि स्वपर पदार्थों के स्वरूप को जानने के लिए न्यूनतम उभय दृष्टि अपेक्षित है, अधिकतम दृष्टियाँ अनंत भी हो सकती हैं क्योंकि प्रत्येक वस्तु में अनेक धर्म होते हैं उन्हें जानने के लिए अनेक अपेक्षाओं वा नयों की आवश्यकता होती है। अपेक्षा युक्त कथन करने का नाम स्याद्वाद है। ग्रंथकार ने स्वयं ग्रंथ में स्याद्वाद को परिभाषित करते हुए कहा भी है–

**एगवत्थुम्मि अणेग-धम्मा विज्जंति पत्तेयसमये।**
**सावेक्खेणं ताणं, कहण-विही वु सिआवाओत्ति॥178॥**

प्रत्येक समय एक वस्तु में अनेक धर्म विद्यमान होते हैं उनको सापेक्ष रूप से कथन करने की विधि स्याद्वाद है।

एक अपेक्षा का एक बार में कथन करना नय है। अथवा विभिन्न रूप से नय को लक्षित करते हुए आचार्यों ने कहा–**'विकलादेशो नयाधीनः'**, **'वक्तुरभिप्रायो नयः'**, **'एकदेशवस्तुख्यापको नयः'**, **'श्रोतुरभिप्रायो नयः'**। **'वयण-पमाणत्तं'** नामक इस ग्रंथ में नय के स्वरूप को आचार्य महाराज ने इस प्रकार परिभाषित किया–

**वाय-णादु-सोदाणं, अहिप्पायो णयो संविदिदव्वो।**
**णयो वक्खाणदे चिय, वत्थुस्स एगंतं णियमा॥365॥**

वक्ता, ज्ञाता या श्रोता के अभिप्राय को नय कहते हैं। नय नियम से वस्तु के एक अंश को ही कहता है।

सम्यक् नय वस्तु तत्त्व का सम्यक् ज्ञान कराते हैं। अनेक सम्यक् नयों का पुंज प्रमाण ज्ञान होता है। वस्तु अनेकांत रूप होती है। वस्तु के एक धर्म को कहने वाला नय तथा अनेक धर्मों का कथन करने वाला प्रमाण है। इसी बात को आचार्य भगवन् ने ग्रंथ में कहा भी है–

**लोए सव्ववत्थूणि, हवंति अणंतधम्मसंजुत्ताणि।**

**एगाणेग-धम्मो दु, णयपमाणविसयो कमसो य॥363॥**

मिथ्या नयों का समूह कभी सम्यक् रूप या प्रमाणरूप नहीं होता। मिथ्या नयों के माध्यम से अज्ञान की ही वृद्धि होती है। सापेक्ष रूप सम्यक् नय ही वस्तु का यथार्थ तत्त्वार्थावबोध कराने में समर्थ होते हैं। आचार्य भगवन् श्री समंतभद्र स्वामी ने देवागम स्तोत्र में कहा भी है–

**मिथ्यासमूहो मिथ्याचेन्न मिथ्यैकान्तास्ति नः।**

**निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षवस्तु तेऽर्थकृत्॥108॥**

निरपेक्ष नय मिथ्या नय होते हैं, सापेक्ष नय मिथ्या न होकर सम्यक् नय होते हैं, उनके विषय अर्थ क्रियाकारी होते हैं और इसलिए उनके समूह के वस्तुपना सुघटित है। सन्मति सूत्र में भी कहा है–

**पज्जवणिस्सामण्णं, वयणं दव्वट्ठियस्स अत्थित्ति।**

**अवसेसो वयणविही पज्जवभयणा सपडिवेक्खो॥7॥**

'है' यह पर्याय से रहित सामान्य द्रव्यार्थिक नय का वचन है। पर्याय के विभाव से बाकी सब वचन विधि सापेक्ष हैं। परस्पर सापेक्ष होने से ही ये नय है।

**दुर्निवारनयानीक-विरोधध्वंसनौषधिः।**

**स्यात्कारजीविता जीयात् जैनी सिद्धांतपद्धतिः॥ –आ.अमृतचंद्र स्वामी**

जो दुर्निवार नय समूह के विरोध को नष्ट करने के लिए औषधि स्वरूप है ऐसी स्यात्कार से जीवित जिनेंद्र भगवान् की सिद्धांत पद्धति सदैव जीवंत रहे।

नय प्रमाणादि के द्वारा ही वस्तु तत्त्व का सम्यक् बोध संभव है। सापेक्ष, निरपेक्ष, सामान्य, विशेष, मुख्य, गौणादि की विवक्षा श्री जिनेंद्र

भगवान् के मत में ही है। इन्हीं नयादि के द्वारा परीक्षण कर तत्त्वों का ग्रहण करना चाहिए। आचार्य श्री ने इसी ग्रंथ में कहा भी है–

**लक्खणेहि परिक्खणं, कडुअ उवयरदि वेज्जो रोगीणं।**
**बुहा गहेज्ज तच्चाणि, जह तहेव सण्णाणस्स सय॥194॥**

जैसे लक्षणों के द्वारा परीक्षा करके वैद्य रोगियों का उपचार करता है वैसे ही सम्यग्ज्ञान के लिए बुधजन को सदा परीक्षण करके तत्त्वों को ग्रहण करना चाहिए।

इस नय प्रमाण आदि से परीक्षण तब ही संभव है जब वह परीक्षक नयादि को जानता हो। स्वर्ण की कसौटी पर कसकर परीक्षा लेने में वही समर्थ है जो कसौटी को जानता है। अतः ग्रंथ में आचार्य महाराज ने द्रव्य के लक्षण, गुण, पर्याय, स्वभावादि का कथन कर जिनके द्वारा इन्हें जाना गया है उन प्रमाण, नय आदि का भी विशेष वर्णन किया है। इसके जाने बिना द्रव्यानुयोग को समीचीन रूप से समझना सरल प्रतीत नहीं होता और उसके बिना मोक्ष दुर्ग में प्रवेश संभव नहीं। अतः द्रव्यानुयोग के अध्ययन से पूर्व इस ग्रंथ का बोध अत्यंतावश्यक है। इनको जाने बिना न्याय का ज्ञाता होना भी संभव नहीं। नय, प्रमाण आदि के द्वारा वस्तु तत्त्व को जानने वाला ही कर्म क्षय कर निर्वाण प्राप्त करने में समर्थ होता है। इस ही ग्रंथ में आचार्य गुरुवर ने कहा है–

**महाजोद्धा विणस्सदि, जह सत्तुणो तिक्ख-असि-पहारेण।**
**णयधारजुद-पमाण-असिणा जोगी तह कम्माणि॥500॥**

जैसे महायोद्धा तीक्ष्ण असि प्रहार से शत्रुओं को नष्ट करता है वैसे ही नय धार से युक्त प्रमाण की तलवार के द्वारा योगी कर्म नष्ट करते हैं।

प्रस्तुत **'वयण-पमाणत्तं'** नामक ग्रंथ में 16 अधिकार हैं।

1. **द्रव्याधिकार**–इस अधिकार में मंगलाचरण, देव-शास्त्र-गुरु का स्वरूप, सम्यग्ज्ञान का लक्षण, प्रमाणिक व अप्रमाणिक वचनों का कारण, वचनों की महत्ता, वक्तव्य, सापेक्ष-निरपेक्ष वचन फल, द्रव्य के लक्षण, भेद, उनके लक्षणादि का विस्तार से कथन है।

2. **गुणाधिकार**–द्वितीय अधिकार में द्रव्यों के सामान्य व विशेष गुणों का अद्भुत कथन है।
3. **पर्यायाधिकार**–तृतीय अधिकार में द्रव्यों की स्वभाव-विभाव पर्याय वा अर्थ-व्यंजन पर्याय का श्रेष्ठ वर्णन है।
4. **स्वभावाधिकार**–इस अधिकार में द्रव्य के सामान्य व विशेष स्वभाव का प्ररूपण है।
5. **स्याद्वादाधिकार**–इस अधिकार में स्याद्वाद का लक्षण, सिद्धि, महत्ता, सप्तभंगी, स्याद्वाद रीति आदि का निरूपण है।
6. **तत्त्वाधिकार**–इस अधिकार में सात तत्त्व, उनके लक्षण, भेद, प्रत्यय एवं पुण्य-पाप का आख्यान है।
7. **उपायाधिकार**–इस लघु अधिकार में पदार्थों को जानने के उपाय, परीक्षा करके ही तत्त्व ग्रहण करने आदि का कथन है।
8. **लक्षणाधिकार**–इस अधिकार में लक्षण का स्वरूप, उसके भेद, लक्षणाभास, लक्षण के दोषादि का सोदाहरण वर्णन है।
9. **प्रमाणाधिकार**–इस अधिकार में प्रत्यक्ष व परोक्ष ज्ञान, उनके लक्षण व भेद जिसके अंतर्गत प्रत्यभिज्ञान, साध्य, साधन, हेतु, उदाहरण, दृष्टांत, विजिगीषु व वीतराग कथा, उनके अंग व प्रमाणाभास आदि का सविस्तार निरूपण है।
10. **निक्षेपाधिकार**–इस अधिकार में निक्षेप का स्वरूप, उनके भेद व उनके लक्षण व प्रभेदादि का सुंदरतम प्ररूपण है।
11. **अनुयोगाधिकार**–इस लघु अधिकार में अनुयोग द्वार के भेद व उनके स्वरूपों का वर्णन है।
12. **नयाधिकार**–इस अधिकार में नय का लक्षण, 'द्रव्यार्थिक', पर्यायार्थिक नय, द्रव्यार्थिक नय के 10 भेद, पर्यायार्थिक नय के 6 भेद, नैगमादि सात नयों का भेद सहित कथन है। एवं उपनयों–सद्भूत व्यवहार उपनय, असद्भूत व्यवहार उपनयादि का भेद सहित कथन है।

13. **अध्यात्म नयाधिकार**–इस अधिकार में अध्यात्म नय के भेद, व्यवहार व निश्चय का भेद सहित कथन है।
14. **दुर्नयाधिकार**–इस अधिकार में दुर्नय लक्षण, संकरादि आठ दोष एवं सर्वथा एक ही पक्ष में दूषण आदि का प्ररूपण है।
15. **सुनययोजनिकाधिकार**–इस अधिकार में सम्यक् नयों का नियोजन किया गया है। किस नय के द्वारा कौन सा स्वभाव वस्तु में घटित होता है इसका सरलतम रूप से वर्णन है।
16. **चूलिकाधिकार**–इस अधिकार में सर्वज्ञ भगवान् के वचन, गणधर के वचन, परीक्षण वा आगमानुसार वचनों का प्रमाणत्व, श्रुतज्ञान की महत्ता, श्रुत व साधुओं से जिनशासन की संस्थिति, शास्त्र संरक्षण, रत्नत्रय युत मोक्ष मार्ग, दुर्नय विनाशक घटकों का वर्णन कर अंतिम मंगलाचरण, ग्रंथकार की लघुता एवं ग्रंथ की प्रशस्ति के साथ ग्रंथ को पूर्ण किया।

543 गाथाओं से समन्वित **'वयण-पमाणत्तं'** (वचन प्रमाणत्व) नाम का यह न्याय ग्रंथ परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा प्रणीत श्रेष्ठ ग्रंथ है। नय वा न्याय में प्रवेश करने वालों के लिए तो यह ग्रंथ अवश्य ही पठनीय व स्मरणीय है। आचार्य गुरुवर ने इतने सुबोध व सरल शब्दों में इस विषय को क्रमबद्ध रूप से प्ररूपित किया है कि कोई प्रारंभिक विद्यार्थी इससे सरलता से इष्ट तत्त्व को समझ सकता है। 'यद्यपि स्वाध्याय से पराङ्मुख जनों को यह विषय कुछ रुचिकर प्रतिभासित नहीं होता, कदाचित् सभी स्वाध्याय प्रेमियों को भी नहीं। कई लोग तो यह सोच ही चुके हैं कि यह नयादि का विषय उनको समझ में नहीं आएगा। किन्तु आचार्य गुरुवर द्वारा लिखित इस ग्रंथ ने उस विषय को भी सरल व रुचिकर बना दिया।

द्रव्यानुयोग में प्रवेशार्थ यह तोरण युक्त प्रवेश द्वार ही है।

पूज्य गुरुवर की यह दूरदर्शिता, लघुता व महानता है कि ग्रंथ लेखन के पश्चात् उन्हें जन-जन तक पहुँचाने के पूर्व विद्वत्जनों के मध्य उनका

वाचन कराते हैं। उस वाचना में आए विद्वत्जन भी नवीन-नवीन जानकारी प्राप्त कर, ज्ञान प्राप्त कर निज सौभाग्य की सराहना करते हैं। प्रस्तुत ग्रंथ की वाचना 1, 2 मार्च 2021 में श्री जम्बूस्वामी तपोस्थली बौलखेड़ा में हुई थी जिसमें बा. ब्र. अनिल भैया जी, श्री विनोद कुमार जी (रजवास), श्री आशीष जैन शाहगढ, श्री मनोज कुमार शास्त्री (आहार जी) उपस्थित थे। ग्रंथ का आलोडन-विलोडन कर आचार्य श्री से शंका समाधान कर उस श्रुत क्रीड़ा का वह आनंद यहाँ अवर्णनीय है।

परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी दिगंबर जैन आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज कई प्राकृत ग्रंथों का संयोजन कर चुके हैं–

अप्पणिब्भर-भारदो, रट्ठ-संति–महाजण्णो, अज्ज-सक्किदी, तच्च-सारो, आदि ग्रंथ लिखकर देश व राष्ट्र के प्रति उदात्त भावनाओं का परिचय दिया और अपनी लेखनी के माध्यम से संपूर्ण राष्ट्र का मार्ग प्रदर्शन किया। 'धम्म-सुत्तं णदिणंद-सुत्तं, विज्जावसु-सावयायारो, जिणवर-थोत्तं, अहिंसगाहारो, को विवेगी' आदि ग्रंथ लिखकर श्रावकों की जीवन संहिता उनको सौंपी, जिससे वे सम्यक् पथ पर गतिशील हो सकें। 'कला-विण्णाणं' जैसे ग्रंथों को लिख जहाँ कलाओं व कलाविशारदों को प्रोत्साहित कर कला को जीवन में वृद्धिंगत करने का निर्देश दिया तो वहीं 'अप्पसत्ती, सुद्धप्पा, अप्प-विहवो' आदि आध्यात्मिक ग्रंथ लिख भारत को जिस कारण 'विश्व-गुरु' कहा जाता है उसी आध्यात्मिक वैभव का प्रदर्शन किया।

'भत्ति-संगहो, जिणवर-थोत्तं, णिग्गंथ-थुदी, णमोयार-महप्पुरो' आदि भक्ति पूरित ग्रंथों का लेखन किया। 'समवसरण-सोहा, मूलवण्णो, मंगलसुत्तं, विस्स-धम्मो, विस्सपुज्जो दियंबरो, अणुवेक्खा-सारो' इत्यादि ग्रंथों का लेखन किया। श्रमणों की चर्या का व्याख्यान करने वाला लगभग 2500 गाथाओं में निबद्ध 'समणायारो' ग्रंथ आचार्य श्री के द्वारा लिखित है। 'कम्म-सहावो' जैसा सिद्धांत ग्रंथ है तो वहीं प्रथमानुयोग का 'सिरि सीयलणाह चरियं' जैसा ग्रंथ जो अनेक रस अलंकारों से युक्त महाकाव्य है। 'रयण-कंडो' नामक प्राकृत का सबसे वृहद सूक्ति कोश भी आचार्य द्वारा रचित है।

कृतियाँ स्वयं कृतिकार के व्यक्तित्व की व्याख्याता होती हैं। विशाल संघ का संचालन करते हुए, प्रतिवर्ष लगभग दो हजार कि.मी. का विहार करते हुए, तीर्थों का जीर्णोद्धार व निर्माण कराते हुए हिंदी की कृतियों का लेखन करते हुए, विभिन्न समाजों को मार्ग निर्देशन देते हुए, उपवासादि करते हुए, धवला जी आदि ग्रंथों की वाचना करते हुए, करोड़ों जापों के संकल्प को पूरा करते हुए कब इन ग्रंथों का लेखन करते हैं यह बहुत ही आश्चर्य की बात है।

आचार्य श्री के प्राकृत ग्रंथों को पढ़कर उनके ज्ञान की गंभीरता का अनुमान विद्वत् सुधी जनों द्वारा लगाया जा सकता है। आचार्य श्री ने प्राकृत भाषा में इतने ग्रंथों का लेखन कर आज वर्तमान पीढ़ी में प्राकृत के प्रति जो अलख जगायी है वह अनुपमेय है। यहाँ तक की यह भाषा बोलचाल तक भी पहुँचें अतएव आचार्य गुरुवर ने इसमें गीत, नाटक आदि भी लिखे। जिस प्राकृत भाषा का शंखनाद, सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज ने किया था उसकी गूंज उन्हीं के शिष्य आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज आज समस्त विश्व में प्रसारित कर रहे हैं।

समस्त जिनमतानुयायी आचार्य श्री के प्रति कृतज्ञ भाव रखते हैं। भविष्य में भी इस साहित्य के माध्यम से सम्यक्त्व ज्ञान वा रत्नत्रय को जीवन में धारण करने वाले महानुभाव आचार्य श्री के प्रति भक्ति व कृतज्ञता का भाव रखेंगे।

समस्त श्रमण गगन गौरवान्वित है ऐसे आचार्य को पाकर, जो जिनशासन के संरक्षण व संवर्द्धन में अनुरक्त हैं एवं आत्मकल्याण में सदा संलग्न हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ **'वयण-पमाणत्तं'** (वचन प्रमाणत्व) परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा लिखित अनुपम ग्रंथ है। ग्रंथ स्वाध्याय निश्चय से भाव विशुद्धि, पुण्य संप्राप्ति, पाप निवृत्ति आदि का हेतु है। हमें आशा है कि इसका अध्ययन कर पाठक जन सम्यक् लाभ प्राप्त करेंगे। पूज्य गुरुवर श्री के आशीर्वाद से ग्रंथ संपादन का सौभाग्य मुझे प्राप्त

हुआ। इसमें मेरा कुछ भी पुरुषार्थ नहीं है। सब गुरु चरणों की कृपा ही है उनके ही आशीर्वाद से मुझ जैसी अल्पज्ञ इस ग्रंथ का संपादन कर सकी है अन्यथा मेरी लघु बुद्धि इस कार्य को करने में समर्थ नहीं थी। ग्रंथ का संपादन पूज्य गुरुदेव की कृपादृष्टि का ही फल है।

यदि इस ग्रंथ के संपादन में कोई त्रुटि रह गई हो तो विज्ञजन संशोधित कर पढ़ें, हंसवत् गुणग्राही दृष्टि से ग्रंथाध्ययन करें। जन-जन के श्रद्धापुंज परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज का संयम, तप, ज्ञान, साधना का सौरभ सहस्रों वर्षों तक संपूर्ण विश्व को सुरभित करता रहे। गुरुवर श्री को आरोग्य लाभ हो एवं अपने लक्ष्य को शीघ्र प्राप्त करें। परमपूज्य गुरुवर श्री के चरणों में सिद्ध-श्रुत-आचार्य भक्ति सहित कोटिशः नमोस्तु! नमोस्तु! नमोस्तु!

'जैनं जयतु शासनम्'

श्री शुभमिति अश्विन कृष्ण द्वादशी
श्री वीर निर्वाण संवत् 2547
रविवार 03/10/2021
श्री तारंगा जी सिद्धक्षेत्र
गुजरात

**आर्यिका वर्धस्वनंदनी**

# अन्तर्ध्वनि

पूज्य आचार्य वसुनंदी जी महाराज द्वारा लिखित **'वयण पमाणत्तं'** अर्थात् वचन की प्रामाणिकता और उसके महत्व को प्रतिपादन करने वाला ग्रंथ जैन वाङ्मय के लिए प्रथम धरोहर के रूप में जाना जाएगा। अभी तक इस विषय पर कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं था। यद्यपि पूर्वाचार्यों ने आगम के लक्षण में कहा है कि–**'आप्तवचनादि-निबन्धनमर्थमागमः'** अर्थात् आप्त के वचन आदि के निमित्त से होने वाले अर्थ ज्ञान को आगम कहा है। वस्तुतः आगम से ही वस्तुतत्त्व का निर्णय होता है और आगम प्रमाण में वचन का महत्वपूर्ण स्थान है।

आचार्य वसुनंदी जी महाराज द्वारा प्राकृत वाङ्मय के उन्नयन में महान ग्रंथों की रचना हो रही है। आपके द्वारा नवीन चिंतन के साथ नवीन विषयों पर अद्भुत प्रमेय प्रस्तुत किया जा रहा है। प्रस्तुत 'वयण पमाणत्तं' बिल्कुल अलग ढंग का ग्रंथ है। आपने आगम के परिप्रेक्ष्य में जिनवचन का महत्त्व प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि–

**वयणं मज्झदीवोव्व पहावेदि जं मणं तहा कायं।**
**वयणाण सुहरूवादु, संभवो वि सुहत्तमण्णाण॥**

वचन मध्यदीपक के समान है जो मन व काय को भी प्रभावित करता है। वचनों के शुभरूप होने से अन्य योगों अर्थात् मन व काय का भी शुभत्व है।

आचार्यश्री का उक्त कथन महत्वपूर्ण है क्योंकि यह कथन युक्तियुक्तपूर्ण है और पाठक के हृदय में वचन की महिमा जरूर आएगी। जिस प्रकार देव-शास्त्र-गुरु में शास्त्र मध्यदीपक का कार्य करता है और शास्त्र वही प्रमाण हैं जो जिनवचनों से युक्त हैं। वस्तुतः उक्त गाथा के

माध्यम से आपने जिनागम की महिमा प्रतिपादित कर विद्वानों को नया चिंतन दे दिया।

इसी प्रकार आपने वक्ता स्व-पर-कल्याण में समर्थ, वक्ता अधिक श्रोता कम, कैसे बोले-सुने, बोलना-सुनना भी कला है; आदि विषयों पर नया मार्गदर्शन प्रदान किया है।

वचन से व्यक्ति की पहिचान होती है और उसकी क्या कीमत है इस बात को समझाने के लिए एक गाथा में ही सब कुछ समझा दिया। आपके द्वारा जो उपमा दी गयी है वह नवीन तो है ही परंतु अत्यधिक हृदयग्राही है जो हमेशा स्मरण रखने योग्य है। आप लिखते हैं कि–

**मुहं दु आवण रूवो ठिद-वत्थुं व तम्हि सया वयणं हि।**
**आवणे उग्घाडिदे, वज्ज कोलाण वा जाणेज्ज॥**

व्यक्ति का मुख दुकान के समान है व वचन उसमें स्थित वस्तु के समान हैं। दुकान खोलने पर ही जाना जाता है कि वह हीरे की है या कोयले की।

आचार्यश्री ने वचन की उपमा हीरे और कोयले से दी परंतु मुख की उपमा दुकान से दी है जो अभूतपूर्व है और हृदय को स्पर्श करने वाली है। यह उपमा मैंने कहीं भी नहीं पढ़ी। यह चिंतन आचार्यश्री का अनुपम एवं ग्राह्य है।

सुवचनों का फल भी आपने इस ग्रंथ में प्रतिपादित करके श्रावक/मुनि सभी को यह प्रेरणा दी है कि जो सुवचन बोलेंगे वहाँ मंगल, शांति, आनंद व समृद्धि का निवास होगा। सापेक्ष वचन, निरपेक्ष वचन इनका फल भी आपने मनोवैज्ञानिक ढंग से निरूपित किया जो बिल्कुल नये ढंग से कहा है परंतु आगमानुकूल एवं नय सम्मत है।

वचनों की पूर्ण विवेचना की दृष्टि से आपने अन्य लब्धियों की विवेचना न करके मात्र देशनालब्धि की विवेचना करके नया प्रमेय चिंतन के

लिए उपलब्ध कराया है। अभी तक सामान्यतया देशनालब्धि का स्वरूप वगैरह पढ़ लेते थे परंतु आपका कहा है कि पाँच लब्धियों में देशनालब्धि मध्यदीपक के समान है और आगे अविनाभाव के रूप में कहते हैं कि इस देशनालब्धि के बिना कोई भी सम्यक्त्व प्राप्त करने में समर्थ नहीं है। इस विषय में भी विद्वानों को विचार करने के लिए आचार्यश्री ने नया प्रमेय दिया है जो युक्तियुक्त है परंतु सूक्ष्मातिसूक्ष्म विचारणीय भी है।

इस ग्रंथ में द्रव्य, गुण और पर्याय की विवेचना में भी आपके द्वारा नवीन शैली में प्रमेय को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि ऐसा प्रतीत होने लगता है कि आचार्यश्री ने नया अधिकार कहाँ से बना दिया परंतु विचार करने पर युक्तिसंगत और उपयोगी सिद्ध होता है। जैसे स्वभावाधिकार में सभी द्रव्यों के स्वभाव का निरूपण व्यवस्थित रूप से करके पाठकों को सरल शैली में समझा करके ग्रंथ को जनोपयोगी तो बना ही दिया और साथ में यह प्राकृत वाङ्मय के समुन्नयन में उन प्राकृत ग्रंथों में गिना जायेगा जो शोधार्थियों के लिए उपादेय होगा। इस ग्रंथ के वैशिष्ट्य को दृष्टि में रखकर कहा जा सकता है कि आचार्यश्री की दृष्टि निरंतर शोधात्मक विषयों की ओर अग्रसर है जो विद्वज्जगत के लिए महान् उपकारी है। ऐसे महान् उपकारी गुरु के चरणों में मेरी अंतर्ध्वनि से कोटिशः नमोऽस्तु।

गुरुभक्त

**शीतलचन्द जैन**

पूर्व अधिष्ठाता-श्रमण विद्यासंकाय

ज.रा.रा. राजस्थान सं. विश्व वि., जयपुर

# अनुक्रमणिका


| क्र.सं. | विषय | गाथा सं. | पृष्ठ सं. |
|---|---|---|---|
| | I. द्रव्याधिकार | | |
| 1. | मंगलाचरण | 1 | 01 |
| 2. | जिनधर्म महिमा | 4 | 02 |
| 3. | पंचगुरु व सिद्धक्षेत्र वंदन | 5 | 02 |
| 4. | आप्त स्वरूप | 6 | 02 |
| 5. | सर्वज्ञ देव | 7 | 03 |
| 6. | निर्ग्रंथ साधु स्वरूप | 8 | 03 |
| 7. | शास्त्र स्वरूप | 9 | 03 |
| 8. | सर्वांग से दिव्यध्वनि | 10-11 | 04 |
| 9. | सम्यग्ज्ञान लक्षण | 12 | 04 |
| 10. | सम्यग्ज्ञानी प्रमाणभूत | 13 | 04 |
| 11. | केवलज्ञान ही प्रमाण | 14 | 05 |
| 12. | अप्रमाणिक वचनों का कारण | 15-16 | 05 |
| 13. | जिनेन्द्रदेव प्रमाणभूत | 17 | 06 |
| 14. | वचनयोग युक्त जीव | 18-21 | 06-07 |
| 15. | संज्ञी हितार्थ समर्थ | 22 | 07 |
| 16. | संज्ञी जीव | 23-24 | 08 |
| 17. | वचन मध्य दीपक | 25 | 08 |
| 18. | वक्ता स्वपर कल्याण में समर्थ | 26 | 09 |
| 19. | वक्ता अधिक श्रोता कम | 27 | 09 |
| 20. | कैसे बोलें-सुनें? | 28 | 09 |
| 21. | बोलना सुनना भी कला | 29-30 | 10 |
| 22. | प्रवृत्ति में अन्तर | 31 | 10 |

| क्र.सं. | विषय | गाथा सं. | पृष्ठ सं. |
|---|---|---|---|
| 23. | वक्तव्य | 32 | 11 |
| 24. | उत्कृष्ट वचन | 33 | 11 |
| 25. | वचनाकांक्षी | 34 | 11 |
| 26. | मधुर बोल | 35 | 12 |
| 27. | वचन से कीमत | 36 | 12 |
| 28. | मनचाहे को अनचाहा | 37 | 12 |
| 29. | वचनों से मानापमान | 38 | 13 |
| 30. | सुवचन | 39 | 13 |
| 31. | चतुर्विध वचन | 40 | 13 |
| 32. | वक्ता से वचन प्रमाणिक | 41 | 14 |
| 33. | शब्दाभिप्राय | 42 | 14 |
| 34. | हित वचन | 43 | 14 |
| 35. | मित वचन | 44-45 | 15 |
| 36. | प्रिय वचन | 46 | 15 |
| 37. | वक्तव्य | 47 | 16 |
| 38. | सुवचन फल | 48 | 16 |
| 39. | सापेक्ष वचन फल | 49 | 16 |
| 40. | निरपेक्ष वचन फल | 50 | 17 |
| 41. | जिनवचन से सम्यक्त्वादि संभव | 51 | 17 |
| 42. | देशना लब्धि | 52 | 17 |
| 43. | सर्व हितार्थ देशना | 53 | 18 |
| 44. | द्रव्यादि देशना | 54 | 18 |
| 45. | द्रव्यबोधार्थ सम्यक्त्वावश्यक | 55 | 18 |
| 46. | द्रव्य के मुख्य भेद | 56 | 19 |
| 47. | गुणादि कथन प्रतिज्ञा | 57 | 19 |
| 48. | द्रव्य लक्षण | 58 | 19 |

| क्र.सं. | विषय | गाथा सं. | पृष्ठ सं. |
|---|---|---|---|
| 49. | द्रव्य के छः भेद | 59 | 20 |
| 50. | शुद्धाशुद्ध द्रव्य | 60 | 20 |
| 51. | जीवाजीव | 61 | 20 |
| 52. | द्विविध चेतना | 62 | 21 |
| 53. | दर्शनोपयोग व ज्ञानोपयोग | 63-65 | 21-22 |
| 54. | क्रम व युगपत् उपयोग | 66-67 | 22 |
| 55. | जीव भेद | 68 | 23 |
| 56. | पुद्गल लक्षण | 69 | 23 |
| 57. | पुद्गल भेद | 70-71 | 24-25 |
| 58. | स्थूल स्थूल | 72 | 24 |
| 59. | स्थूल | 73 | 25 |
| 60. | स्थूल सूक्ष्म | 74 | 26 |
| 61. | सूक्ष्म स्थूल | 75 | 26 |
| 62. | सूक्ष्म | 76 | 26 |
| 63. | सूक्ष्म सूक्ष्म | 77 | 26 |
| 64. | पुद्गल की दस पर्याय | 78-79 | 26 |
| 65. | पुद्गल स्थूल व सूक्ष्म | 80 | 27 |
| 66. | सापेक्ष व अंत्य स्थूल | 81-82 | 27 |
| 67. | सापेक्ष व अंत्य सूक्ष्म | 83-84 | 28 |
| 68. | शब्द | 85 | 28 |
| 69. | भेद | 86 | 28 |
| 70. | संस्थान | 87 | 29 |
| 71. | बंध | 88 | 29 |
| 72. | परमाणु बंध | 89-90 | 29-30 |
| 73. | छाया | 91 | 30 |
| 74. | आतप | 92 | 30 |

| क्र.सं. | विषय | गाथा सं. | पृष्ठ सं. |
|---|---|---|---|
| 75. | उद्योत | 93 | 31 |
| 76. | तम | 94 | 31 |
| 77. | धर्म द्रव्य | 95 | 31 |
| 78. | अधर्म द्रव्य | 96 | 32 |
| 79. | आकाश द्रव्य | 97 | 32 |
| 80. | व्यवहार व निश्चय काल | 98 | 32 |
| 81. | निश्चय काल | 99 | 33 |
| 82. | व्यवहार काल | 100-103 | 33 |
| 83. | द्रव्य प्रदेश व संख्या | 104-106 | 35-36 |
| 84. | अस्तिकाय | 107-109 | 36 |
| | II. गुणाधिकार | | |
| 85. | गुण भेद | 110 | 37 |
| 86. | सामान्य गुण | 111-112 | 37 |
| 87. | अस्तित्व | 113 | 38 |
| 88. | वस्तुत्व | 114 | 38 |
| 89. | द्रव्यत्व | 115 | 38 |
| 90. | प्रमेयत्व | 116 | 39 |
| 91. | अगुरुलघुत्व | 117-118 | 39 |
| 92. | प्रदेशत्व | 119 | 40 |
| 93. | विशेष गुण | 120 | 40 |
| 94. | जीव के विशेष गुण | 121 | 40 |
| 95. | पुद्गल के विशेष गुण | 122 | 41 |
| 96. | अन्य द्रव्यों के विशेष गुण | 123 | 41 |
| 97. | चार सामान्य या विशेष गुण | 124-125 | 41-42 |
| 98. | शाश्वत शुद्ध द्रव्य | 126 | 42 |

| क्र.सं. | विषय | गाथा सं. | पृष्ठ सं. |
|---|---|---|---|
| | **III. पर्यायाधिकार** | | |
| 99. | पर्याय के एकार्थवाची व भेद | 127 | 42 |
| 100. | द्रव्य गुण पर्याय | 128 | 43 |
| 101. | द्रव्य पर्याय भेद | 129 | 43 |
| 102. | जीव-पुद्गल की स्वभाव-विभाव पर्याय | 130 | 43 |
| 103. | गुण पर्याय भेद | 131 | 44 |
| 104. | जीव की विभाव गुण पर्याय | 132 | 44 |
| 105. | पुद्गल की विभाव गुण पर्याय | 133 | 45 |
| 106. | जीव की स्वभाव गुण पर्याय | 134 | 45 |
| 107. | पुद्गल की स्वभाव गुण पर्याय | 135 | 45 |
| 108. | व्यंजन-अर्थ पर्याय | 136 | 45 |
| 109. | अर्थ-व्यंजन पर्याय लक्षण | 137-138 | 46 |
| 110. | अर्थपर्याय भेद | 139 | 46 |
| 111. | स्वभाव अर्थपर्याय | 140 | 47 |
| 112. | षट् गुणहानिवृद्धि | 141-142 | 47 |
| | **IV. स्वभावाधिकार** | | |
| 113. | स्वभाव ही तत्त्व | 143 | 48 |
| 114. | पृथक्-पृथक् स्वभाव | 144 | 48 |
| 115. | द्रव्य स्वभाव नहीं छोड़ते | 145 | 48 |
| 116. | सामान्य स्वभाव | 146 | 49 |
| 117. | विशेष स्वभाव | 147 | 49 |
| 118. | अस्ति स्वभाव | 148-149 | 49-50 |
| 119. | नास्ति स्वभाव | 150 | 50 |
| 120. | नित्य स्वभाव | 151 | 50 |
| 121. | अनित्य स्वभाव | 152 | 51 |
| 122. | एक स्वभाव | 153 | 51 |
| 123. | अनेक स्वभाव | 154 | 51 |

| क्र.सं. | विषय | गाथा सं. | पृष्ठ सं. |
|---|---|---|---|
| 124. | भेद स्वभाव | 155 | 52 |
| 125. | अभेद स्वभाव | 156 | 52 |
| 126. | भव्य स्वभाव | 157 | 52 |
| 127. | अभव्य स्वभाव | 158 | 53 |
| 128. | परम स्वभाव | 159 | 53 |
| 129. | चेतन अचेतन स्वभाव | 160 | 54 |
| 130. | मूर्त-अमूर्त स्वभाव | 161-162 | 54 |
| 131. | काल एकप्रदेश स्वभावी | 163 | 54 |
| 132. | एकप्रदेश स्वभाव | 164 | 55 |
| 133. | अणु बहुप्रदेशी भी | 165 | 55 |
| 134. | अन्य द्रव्य बहुप्रदेशी भी | 166 | 55 |
| 135. | जीव व पुद्गल का विभाव स्वभाव भी | 167-168 | 55 |
| 136. | पुद्गल शुद्धाशुद्ध | 169 | 56 |
| 137. | धर्मादि द्रव्यों का विभाव स्वभाव नहीं | 170 | 57 |
| 138. | द्रव्यों का शुद्धाशुद्ध स्वभाव | 171 | 57 |
| 139. | उपचरित स्वभाव | 172 | 57 |
| 140. | उपचरित स्वभाव व भेद | 173 | 58 |
| 141. | कर्मज-स्वाभाविक उपचरित स्वभाव | 174 | 58 |
| 142. | द्रव्यों की स्वभाव संख्या | 175 | 58 |
| 143. | स्वभाव लक्षण | 176 | 59 |
| 144. | सभी स्वभाव गुण नहीं | 177 | 59 |
| | V. स्याद्वाधिकार | | |
| 145. | स्याद्वाद | 178 | 59 |
| 146. | स्याद्वाद से सिद्धि | 179 | 60 |
| 147. | स्याद्वाद की महत्ता | 180 | 60 |
| 148. | सप्तभंगी | 181 | 60 |

| क्र.सं. | विषय | गाथा सं. | पृष्ठ सं. |
|---|---|---|---|
| 149. | स्यात् अस्ति | 182 | 61 |
| 150. | स्यात् नास्ति | 183 | 61 |
| 151. | स्यात् अस्ति-नास्ति | 184 | 61 |
| 152. | स्यात् अवक्तव्य | 185 | 62 |
| 153. | स्यात् अस्ति अवक्तव्य | 186 | 62 |
| 154. | स्यात् नास्ति अवक्तव्य | 187 | 62 |
| 155. | स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य | 188-189 | 63 |
| 156. | सात का महात्म्य | 190-192 | 63 |
| 157. | ज्ञानी व ज्ञानाभासी | 193 | 64 |
| 158. | तत्त्वबोधार्थ स्याद्वाद | 194 | 65 |
| 159. | स्याद्वाद से यथार्थ ज्ञान | 195 | 65 |
| 160. | स्याद्वाद बिना जिनशासन नही | 196 | 65 |
| 161. | स्याद्वाद बिना सम्यग्ज्ञानी नही | 197 | 66 |
| 162. | स्याद्वाद से वस्तु स्वरूप ज्ञान | 198 | 66 |
| 163. | स्याद्वाद युक्त सम्यक् नय | 199 | 66 |
| 164. | एकांत पक्ष हेय | 200 | 67 |
| 165. | स्याद्वाद रीति | 201-202 | 67 |
| 166. | स्याद्वाद वचनोपादेय | 203-204 | 68 |
| 167. | स्याद्वाद से सम्यक्त्वादि | 205 | 68 |
| 168. | मोक्ष हेतु | 206 | 69 |
| 169. | तत्त्व श्रद्धान | 207 | 69 |
| | VI. तत्त्वाधिकार | | |
| 170. | सप्त तत्त्व | 208 | 69 |
| 171. | जीव-अजीव तत्त्व | 209 | 70 |
| 172. | आस्रव तत्त्व | 210 | 70 |
| 173. | आस्रव प्रत्यय | 211 | 71 |

| क्र.सं. | विषय | गाथा सं. | पृष्ठ सं. |
|---|---|---|---|
| 174. | बंध तत्त्व | 212 | 71 |
| 175. | बंध भेद | 213 | 71 |
| 176. | संवर तत्त्व | 214 | 71 |
| 177. | संवर के कारण | 215 | 72 |
| 178. | सविपाकी निर्जरा | 216 | 72 |
| 179. | अविपाकी निर्जरा | 217 | 72 |
| 180. | अकाम निर्जरा | 218 | 73 |
| 181. | जीव के तत्त्व | 219 | 73 |
| 182. | मोक्ष | 220 | 73 |
| 183. | सम्यक्त्व आवश्यक | 221 | 74 |
| 184. | नव पदार्थ | 222-223 | 75 |
| 185. | पाप कर्म | 224 | 75 |
| 186. | पुण्य कर्म | 225 | 75 |
| 187. | पुण्य मोक्ष कारण भी | 226 | 75 |
| | VII. उपायाधिकार | | |
| 188. | पदार्थों को जानने का उपाय | 227 | 76 |
| 189. | परीक्षा कर तत्त्व ग्रहण | 228-230 | 76 |
| 190. | परीक्षण आवश्यक | 231-232 | 77 |
| 191. | नयादि द्वारा ही यथार्थ ज्ञान | 233 | 77 |
| | VIII. लक्षणाधिकार | | |
| 192. | लक्षण स्वरूप | 234 | 78 |
| 193. | आत्मभूत व अनात्मभूत लक्षण | 236 | 78 |
| 194. | लक्षण उदाहरण | 236 | 78 |
| 195. | लक्षणाभास | 237 | 79 |
| 196. | अव्याप्ति दोष | 238 | 79 |
| 197. | अव्याप्ति दोष | 239 | 79 |

| क्र.सं. | विषय | गाथा सं. | पृष्ठ सं. |
|---|---|---|---|
| 198. | असंभव दोष | 240 | 80 |
| 199. | विशेष व सामान्य लक्षण | 241-242 | 80 |
| 200. | द्रव्य के साथ गुण अन्वयी | 243 | 81 |
| 201. | व्यवहार व शुद्ध लक्षण | 244 | 81 |
| | **IX. प्रमाणाधिकार** | | |
| 202. | सम्यग्ज्ञान ही प्रमाण | 245-246 | 81 |
| 203. | प्रत्यक्ष व परोक्ष प्रमाण | 247 | 82 |
| 204. | परोक्ष प्रमाण | 248-249 | 82 |
| 205. | प्रत्यक्ष ज्ञान | 250 | 83 |
| 206. | संव्यवहारिक प्रत्यक्ष के भेद | 251 | 83 |
| 207. | पारमार्थिक प्रत्यक्ष के भेद | 252 | 84 |
| 208. | अवधिज्ञान | 253 | 84 |
| 209. | अवधिज्ञान भेद | 254 | 84 |
| 210. | भवप्रत्यय अवधिज्ञान | 255 | 85 |
| 211. | गुणप्रत्यय अवधिज्ञान | 256-258 | 85 |
| 212. | विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष भेद | 259 | 86 |
| 213. | मनः पर्यय ज्ञान | 260 | 86 |
| 214. | सकल प्रत्यक्ष ज्ञान | 261 | 87 |
| 215. | केवलज्ञानी व श्रुतज्ञानी का विषय | 262 | 87 |
| 216. | श्रुतज्ञान बिना केवलज्ञान नहीं | 263 | 87 |
| 217. | स्वार्थ-परार्थ ज्ञान | 264 | 88 |
| 218. | परोक्ष प्रमाण भेद | 265 | 88 |
| 219. | स्मृति | 266 | 88 |
| 220. | प्रत्यभिज्ञान | 267-268 | 89 |
| 221. | प्रत्यभिज्ञान भेद | 269 | 89 |
| 222. | एकत्व प्रत्यभिज्ञान | 270 | 90 |
| 223. | सादृश्य प्रत्यभिज्ञान | 271 | 90 |

| क्र.सं. | विषय | गाथा सं. | पृष्ठ सं. |
|---|---|---|---|
| 224. | वैसादृश्य प्रत्यभिज्ञान | 272 | 90 |
| 225. | प्रातियोगिक प्रत्यभिज्ञान | 273 | 91 |
| 226. | तर्क | 274 | 91 |
| 227. | अविनाभावी संबंध | 275 | 91 |
| 228. | द्विविध संबंध | 276-277 | 92 |
| 229. | अनुमान ज्ञान | 278 | 92 |
| 230. | स्वार्थ व परार्थानुमान | 279-280 | 92 |
| 231. | साध्य | 281 | 93 |
| 232. | साधन | 282 | 93 |
| 233. | अनुमान के अंग | 283-284 | 94 |
| 234. | प्रतिज्ञा | 285 | 94 |
| 235. | हेतु | 286 | 95 |
| 236. | उदाहरण | 287 | 95 |
| 237. | अन्वय दृष्टांत | 288 | 95 |
| 238. | व्यतिरेक दृष्टांत | 289 | 96 |
| 239. | उपनय व निगमन | 290 | 96 |
| 240. | वीतराग कथा | 291 | 96 |
| 241. | विजिगीषु कथा | 292 | 97 |
| 242. | विजीगीषु व वीतराग कथा में अंग | 293 | 97 |
| 243. | वीतराग कथा में 2, 3, 4 या 5 अंग | 294-295 | 98 |
| 244. | आगम | 296-297 | 98 |
| 245. | हेतत्वाभासादि मिथ्या | 298-299 | 99 |
| 246. | प्रमाणाभास | 300 | 100 |
| 247. | अनुमानाभास भेद | 301 | 100 |
| 248. | पक्षाभास | 302 | 100 |
| 249. | पक्षाभास भेद एवं अनिष्ट पक्षाभास | 303 | 101 |

| क्र.सं. | विषय | गाथा सं. | पृष्ठ सं. |
|---|---|---|---|
| 250. | सिद्ध पक्षाभास | 304-306 | 101 |
| 251. | प्रत्यक्षबाधित | 307 | 102 |
| 252. | अनुमान बाधित | 308 | 102 |
| 253. | आगम बाधित | 309 | 103 |
| 254. | लोक बाधित | 310 | 103 |
| 255. | स्ववचन बाधित | 311 | 103 |
| 256. | हेत्वाभास | 312 | 104 |
| 257. | हेत्वाभास के भेद | 313 | 104 |
| 258. | असिद्ध हेत्वाभास | 314 | 104 |
| 259. | स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास | 315-316 | 105 |
| 260. | संदिग्धासिद्ध हेत्वाभास | 317 | 105 |
| 261. | विरुद्ध हेत्वाभास | 318 | 106 |
| 262. | अनैकांतिक हेत्वाभास का स्वरूप व भेद | 319 | 106 |
| 263. | निश्चित विपक्षवृत्ति हेत्वाभास | 320 | 106 |
| 264. | शंकित विपक्ष वृत्ति हेत्वाभास | 321 | 107 |
| 265. | अकिंचित्कर हेत्वाभास | 322 | 107 |
| 266. | दृष्टांताभास | 323-325 | 107 |
| | **X. निक्षेपाधिकार** | | |
| 267. | निक्षेप स्वरूप | 326-327 | 108 |
| 268. | नाम व स्थापना निक्षेप | 328 | 109 |
| 269. | स्थापना निक्षेप भेद | 329 | 109 |
| 270. | तदाकार स्थापना | 330-331 | 110 |
| 271. | अतदाकार स्थापना | 332-333 | 110 |
| 272. | निक्षेप बिना व्यवहार संभव नहीं | 334 | 111 |
| 273. | द्रव्य निक्षेप | 335-336 | 111 |
| 274. | द्रव्य निक्षेप भेद व आगम द्रव्य | 337 | 112 |

| क्र.सं. | विषय | गाथा सं. | पृष्ठ सं. |
|---|---|---|---|
| 275. | नो आगम द्रव्य व भेद | 338 | 112 |
| 276. | ज्ञायक शरीर नो आगम द्रव्य व भेद | 339 | 112 |
| 277. | वर्तमान व भूतज्ञायक शरीर नो आगम द्रव्य | 340 | 113 |
| 278. | भूतज्ञायक शरीर भेद व च्युत शरीर | 341 | 113 |
| 279. | च्यावित व त्यक्त शरीर | 342-343 | 114 |
| 280. | भावी ज्ञायक शरीर | 344 | 114 |
| 281. | भावी नो आगम द्रव्य | 345 | 114 |
| 282. | तद्व्यतिरिक्त भेद | 346 | 115 |
| 283. | नोकर्म तद्व्यतिरिक्त | 347 | 115 |
| 284. | नोकर्म तद्व्यतिरिक्त भेद | 348 | 115 |
| 285. | सचित्त-अचित्त व मिश्र | 349 | 116 |
| 286. | भाव निक्षेप | 350 | 116 |
| 287. | भाव निक्षेप व भेद | 351-353 | 116 |
| | **XI. अनुयोगद्वाराधिकार** | | |
| 288. | अनुयोग द्वार भेद | 354-355 | 117 |
| 289. | निर्देशादि स्वरूप | 356-357 | 118 |
| 290. | सत् आदि स्वरूप | 358-362 | 119 |
| | **XII. नयाधिकार** | | |
| 291. | नय व प्रमाण विषय | 363 | 120 |
| 292. | प्रमाण-नय लक्षण | 364 | 120 |
| 293. | नय | 365 | 121 |
| 294. | द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक नय | 366 | 121 |
| 295. | द्रव्यार्थिक नय के दस भेद | 367 | 121 |
| 296. | कर्मोपाधिनिरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय | 368 | 122 |
| 297. | सत्ताग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय | 369 | 122 |
| 298. | भेद कल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय | 370 | 122 |
| 299. | कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय | 371 | 123 |

| क्र.सं. | विषय | गाथा सं. | पृष्ठ सं. |
|---|---|---|---|
| 300. | उत्पाद-व्यय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय | 372 | 123 |
| 301. | भेद कल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय | 373 | 123 |
| 302. | अन्वय सापेक्ष द्रव्यार्थिक नय | 374 | 124 |
| 303. | स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय | 375 | 124 |
| 304. | परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय | 376 | 124 |
| 305. | परमभाव ग्राहक द्रव्यार्थिक नय | 377 | 125 |
| 306. | सर्व भेद ग्राह्य | 378 | 125 |
| 307. | पर्यायार्थिक नय के छः भेद | 379 | 125 |
| 308. | अनादि नित्य पर्यायार्थिक नय | 380 | 126 |
| 309. | सादि नित्य पर्यायार्थिक नय | 381 | 126 |
| 310. | अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय | 382 | 126 |
| 311. | अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय | 383 | 127 |
| 312. | अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय | 384 | 127 |
| 313. | अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय | 385 | 127 |
| 314. | नैगमादि नय | 386 | 128 |
| 315. | नैगम नय | 387 | 128 |
| 316. | नैगम नय के भेद | 388-391 | 129 |
| 317. | भूत नैगम नय | 392 | 129 |
| 318. | भावी नैगम नय | 393 | 130 |
| 319. | वर्तमान नैगम नय | 394 | 130 |
| 320. | नैगम नय के अन्य भेद | 395-396 | 130 |
| 321. | संग्रह नय व भेद | 397 | 131 |
| 322. | सामान्य संग्रह नय | 398 | 131 |
| 323. | विशेष संग्रह नय | 399 | 131 |
| 324. | व्यवहार नय व भेद | 400 | 132 |
| 325. | सामान्य व्यवहार नय | 401 | 132 |
| 326. | विशेष व्यवहार नय | 402 | 132 |

| क्र.सं. | विषय | गाथा सं. | पृष्ठ सं. |
|---|---|---|---|
| 327. | ऋजुसूत्र नय व भेद | 403 | 133 |
| 328. | सूक्ष्म ऋजुसूत्र नय | 404 | 133 |
| 329. | स्थूल ऋजुसूत्र नय | 405 | 133 |
| 330. | शब्द नय | 406 | 134 |
| 331. | लिंगव्यभिचार | 407-409 | 134 |
| 332. | संख्याव्यभिचार | 410-411 | 135 |
| 333. | कालव्यभिचार | 412 | 136 |
| 334. | साधन व्यभिचार | 413 | 136 |
| 335. | पुरुष व्यभिचार | 414 | 136 |
| 336. | उपग्रह व्यभिचार | 415-416 | 137 |
| 337. | समभिरूढ़ नय | 417-419 | 137 |
| 338. | एवंभूत नय | 420-421 | 138 |
| 339. | द्रव्य-भाव नय | 422 | 139 |
| 340. | उपनय व भेद | 423-424 | 139 |
| 341. | सद्भूत व्यवहार उपनय व भेद | 425 | 140 |
| 342. | शुद्ध सद्भूत व्यवहार उपनय | 426 | 140 |
| 343. | अशुद्ध सद्भूत व्यवहार उपनय | 427 | 140 |
| 344. | असद्भूत व्यवहार उपनय व भेद | 428 | 141 |
| 345. | स्वजाति असद्भूत व्यवहार उपनय | 429 | 141 |
| 346. | विजाति असद्भूत व्यवहार उपनय | 430 | 141 |
| 347. | स्वजाति विजातीय असद्भूत व्यवहार उपनय | 431 | 142 |
| 348. | उपचरित असद्भूत व्यवहार उपनय व भेद | 432 | 142 |
| 349. | सचित्त उपचरित असद्भूत व्यवहार उपनय | 433 | 142 |
| 350. | अचित्त उपचरित असद्भूत व्यवहार उपनय | 434 | 143 |
| 351. | सचित्ताचित्त उपचरित असद्भूत व्यवहार उपनय | 435-436 | 143 |

| क्र.सं. | विषय | गाथा सं. | पृष्ठ सं. |
|---|---|---|---|
| | **XIII. अध्यात्म नयाधिकार** | | |
| 352. | अध्यात्म नय भेद | 437 | 144 |
| 353. | निश्चय नय के भेद एवं स्वरूप | 438 | 144 |
| 354. | शुद्ध निश्चय नय | 439 | 144 |
| 355. | अशुद्ध निश्चय नय | 440 | 145 |
| 356. | शुद्ध व अशुद्ध निश्चय नय | 441 | 145 |
| 357. | व्यवहार नय व भेद | 442 | 145 |
| 358. | सद्भूत व असद्भूत व्यवहार नय के भेद | 443-447 | 146 |
| 359. | निरपेक्ष व सापेक्ष नय | 448 | 147 |
| | **XIV. दुर्नयाधिकार** | | |
| 360. | दुर्नय | 449 | 148 |
| 361. | मिथ्या नय | 450-451 | 148 |
| 362. | एकांत नय मोक्षमार्ग पोषक नहीं | 452 | 149 |
| 363. | आठ दोष | 453 | 149 |
| 364. | संकर दोष | 454-455 | 149 |
| 365. | विरोध दोष | 456 | 150 |
| 366. | व्यतिकर दोष | 457 | 150 |
| 367. | वैयधिकरण दोष | 458 | 150 |
| 368. | अनवस्था दोष | 459-461 | 151 |
| 369. | संशय दोष | 462 | 151 |
| 370. | अभाव दोष | 463 | 152 |
| 371. | अप्रतिपत्ति दोष | 464-465 | 152 |
| 372. | सर्वथा असत् पक्ष में दूषण | 466 | 153 |
| 373. | सर्वथा नित्य पक्ष में दूषण | 467 | 153 |
| 374. | सर्वथा अनित्य पक्ष में दूषण | 468 | 153 |
| 375. | सर्वथा एक पक्ष में दूषण | 469 | 154 |

| क्र.सं. | विषय | गाथा सं. | पृष्ठ सं. |
|---|---|---|---|
| 376. | सर्वथा अनेक पक्ष में दूषण | 470 | 154 |
| 377. | सर्वथा भेद पक्ष में दूषण | 471 | 154 |
| 378. | सर्वथा अभेद पक्ष में दूषण | 472 | 154 |
| 379. | सर्वथा भव्य पक्ष में दूषण | 473 | 155 |
| 380. | सर्वथा अभव्य पक्ष में दूषण | 474 | 155 |
| 381. | सर्वथा शुद्ध पक्ष में दूषण | 475 | 156 |
| 382. | सर्वथा अशुद्ध पक्ष में दूषण | 476 | 156 |
| 383. | सर्वथा विभाव पक्ष में दूषण | 477 | 156 |
| 384. | सर्वथा स्वभाव पक्ष में दूषण | 478 | 157 |
| 385. | सर्वथा चैतन्य पक्ष में दूषण | 479 | 157 |
| 386. | सर्वथा अचेतन पक्ष में दूषण | 480 | 157 |
| 387. | सर्वथा मूर्तिक पक्ष में दूषण | 481 | 158 |
| 388. | सर्वथा अमूर्तिक पक्ष में दूषण | 482 | 158 |
| 389. | सर्वथा एकप्रदेश पक्ष में दूषण | 483 | 158 |
| 390. | सर्वथा अनेकप्रदेश पक्ष में दूषण | 484 | 159 |
| 391. | सर्वथा उपचरित पक्ष में दूषण | 485 | 159 |
| 392. | सर्वथा अनुपचरित पक्ष में दूषण | 486 | 159 |
| | **XV. सुनय योजनिकाधिकार** | 487-504 | 160-164 |
| | **XVI. चूलिकाधिकार** | | |
| 393. | सर्वज्ञ वचन प्रमाण | 505 | 165 |
| 394. | गणधर वचन भी प्रमाणिक | 506 | 165 |
| 395. | परीक्षण से वचन प्रमाणिक | 507 | 166 |
| 396. | आगमानुसार वचन प्रमाणिक | 508 | 166 |
| 397. | श्रुतज्ञान धर्माधार | 509 | 166 |
| 398. | श्रुत वृद्धि से सम्यक्त्वादि वृद्धि | 510 | 166 |
| 399. | श्रुताभाव में धर्म संभव नहीं | 511 | 167 |

| क्र.सं. | विषय | गाथा सं. | पृष्ठ सं. |
|---|---|---|---|
| 400. | श्रुत व साधु के बिना जिनशासन नहीं | 512 | 167 |
| 401. | श्रद्धा से हितमार्ग | 513 | 167 |
| 402. | शास्त्र संरक्षण | 514 | 168 |
| 403. | श्रुतज्ञान से धर्म संवर्द्धन | 515 | 168 |
| 404. | श्रुत संयम हेतु | 516 | 168 |
| 405. | जिनसम जिनग्रंथ व साधु | 517 | 169 |
| 406. | सम्यग्ज्ञान महत्ता | 518 | 169 |
| 407. | रत्नत्रय युक्त मोक्षमार्ग | 519 | 169 |
| 408. | रत्नत्रय का सार व महासार | 520 | 170 |
| 409. | रत्नत्रय हीन व वचन प्रमाण नहीं | 521 | 170 |
| 410. | रत्नत्रय हीन के नीरस वचन | 522 | 170 |
| 411. | रत्नत्रय से युक्त के वचन प्रमाण | 523 | 171 |
| 412. | मात्र शब्दज्ञानी का कल्याण नहीं | 524 | 171 |
| 413. | स्याद्वाद अनेकांतमय वचन प्रमाण | 525 | 171 |
| 414. | नय प्रमाण से कर्म नाश | 526 | 172 |
| 415. | रत्नत्रय युक्त ही मोक्षमार्गी | 527-528 | 172 |
| 416. | सम्यग्ज्ञान हीन श्रुत मिथ्या | 529 | 173 |
| 417. | जिन शासनाश्रय | 530 | 173 |
| 418. | दुर्नय नाशक | 531 | 173 |
| 419. | अंतिम मंगलाचरण | 532-539 | 174 |
| 420. | शाश्वत शरण | 540 | 175 |
| 421. | ग्रंथकार की लघुता | 541 | 176 |
| 422. | ग्रंथ प्रशस्ति | 542-543 | 176 |

**अभिमतफलसिद्धेरभ्युपायः सुबोधः,**
**स च भवति सुशास्त्रात्तस्य चोत्पत्तिराप्तात्।**
**इति भवति स पूज्यस्तत्प्रसादात्प्रबुद्धि,**
**र्न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति॥**

अर्थ–इच्छित फल की सिद्धि का उपाय सम्यग्ज्ञान है और वह सच्चे शास्त्रों से होता है। शास्त्रों की उत्पत्ति आप्त से होती है इसलिए उनके प्रसाद से ही ज्ञान की प्राप्ति हुई होने से वे पूज्य हैं क्योकि किए गए उपकार को साधुजन भूलते नहीं हैं।

# वयण-पमाणत्तं

## I. द्रव्याधिकार

### मंगलाचरण

**अणंतसहावपज्जय-गुणसुद्धेहि णमिदूण संजुत्तं।**
**सयलपमाणेहि जिणं, वोच्छामि वयण-पमाणत्तं॥1॥**

**अर्थ**–अनंत शुद्ध स्वभाव, शुद्ध पर्याय, शुद्ध गुणों व सकल (प्रत्यक्ष) प्रमाण ज्ञान से युक्त जिनेंद्र केवली प्रभु को नमस्कार करके मैं (आचार्य वसुनंदी मुनि) वचन प्रमाणत्व नामक ग्रंथ को कहता हूँ।

**अणंतसुहाइजुत्ता, अरिहा सिद्धा सव्वकम्मरहिदा।**
**आइरिया पाढगा य, णमंसामि जहाजाद-मुणी॥2॥**

**अर्थ**–अनंत सुख आदि से युक्त अरिहंत, सर्व कर्मों से रहित सिद्ध, यथाजात आचार्य, यथाजात उपाध्याय और यथाजात मुनियों को नमस्कार करता हूँ।

**जिणवयणं हि पमाणं, साहु-वयणं वि तदाणुसारेणं।**
**आगमरूवणुबद्धं, पढमाइ-अणुजोगं णमामि॥3॥**

**अर्थ**–जिनवचन ही प्रमाण हैं। उसके अनुसार साधु के द्वारा कहे गए वचन भी प्रमाण हैं। आगम रूप से अनुबद्ध प्रथमानुयोग आदि को मैं नमस्कार करता हूँ।

## जिनधर्म महिमा

**सव्वत्थ समत्थं जिण-धम्मं भव्वजीवाणं हिदत्थं।**
**इदरस्स पुण्णहेदुं, सस्सदं पणमामि भत्तीइ।।4।।**

**अर्थ**–सर्वत्र भव्यजीवों के हित के लिए समर्थ व इतर अर्थात् अभव्यों के लिए पुण्य के हेतु शाश्वत जिनधर्म को भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ।

## पंचगुरु व सिद्धक्षेत्र वंदन

**बिंबं पंचगुरूणं, वंदामि खेमंकरालयं ताण।**
**सिद्धभूमीउ णिच्चं, कारगा खलु सिद्धखेत्तस्स।।5।।**

**अर्थ**–सिद्धक्षेत्र के कारक (सिद्धगति को प्राप्त करने के निमित्त) पंचगुरुओं (अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु) के बिंब, उनके कल्याणकारक आलय व सिद्धभूमियों की नित्य वंदना करता हूँ।

## आप्त स्वरूप

**गदरायी सव्वण्हू, सव्वदंसी मोहण्णाणहीणो।**
**अणंतसत्तिसंजुदो, भणिदो अत्तो जिणसमयम्मि।।6।।**

**अर्थ**–वीतरागी, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, मोह व अज्ञान से हीन, अनंतशक्ति से युक्त जिनागम में आप्त कहे गए हैं।

## सर्वज्ञ देव

**णाणावरणाइ-घाइ-कम्मरहिदा हु हवंति सव्वण्हू।**
**णिरावरणा तह खइय-णाण-संजुदा वीयरायी॥7॥**

**अर्थ**–ज्ञानावरणादि घातिया कर्मों से रहित, निरावरण व क्षायिक ज्ञान से युक्त वीतरागी, सर्वज्ञ देव होते हैं।

## निर्ग्रंथ साधु स्वरूप

**सम्मत्तणाणचरित्त-जुत्तो सिवपह-साहगो साहू य।**
**मिच्छत्ताइ-विरहिदो, परमट्ठिग-गुरू णिग्गंथो॥8॥**

**अर्थ**–रत्नत्रय-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यग्चारित्र से युक्त, शिव पथ के साधक, मिथ्यात्वादि से रहित, पारमार्थिक गुरु निर्ग्रंथ साधु हैं।

## शास्त्र स्वरूप

**अत्तेहि भासिदं गणहरेहि संगहिदं णिग्गंथेहिं।**
**लिहिदं तह परोप्परे, अविरोहिवयणं चिय सत्थं॥9॥**

**अर्थ**–आप्त के द्वारा कहा गया, गणधरों के द्वारा संग्रहीत व निर्ग्रंथों के द्वारा लिखित, परस्पर अविरोधि वचन निश्चय से शास्त्र हैं।

## सर्वांग से दिव्यध्वनि

**मुहोट्ठतालुजीहाइ-पच्चंगेहि वदंति सव्वण्हू णं।**
**सव्वंगेण णिस्सरदि, दिव्वज्झुणी सहजभावेहि॥10॥**

**अर्थ**–सर्वज्ञ देव मुख, ओष्ठ, तालु, जिह्वा आदि प्रत्यंगों से नहीं बोलते। उनकी सहजभाव से सर्वांग से दिव्यध्वनि निःसरित होती है।

**अत्तवयणं पमाणं, मिच्छावायीहि खंडण-अजोग्गं।**
**एयंताइ-मदाणं, समत्थं तहा णिराकरिदुं॥11॥**

**अर्थ**–आप्त के वचन प्रमाण हैं, मिथ्यावादियों के द्वारा खंडन के अयोग्य हैं तथा एकांतादि मतों का निराकरण करने में समर्थ हैं।

## सम्यग्ज्ञान लक्षण

**णूण-अहियत्त-रहिदं, वददि जहत्थसरूवं वत्थूणं।**
**णेयं सण्णाणं तं, संसयाइ-दोस-रहिदं जं॥12॥**

**अर्थ**–न्यूनता व अधिकता से रहित जो वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप को कहता है वह संशयादि दोषों से रहित सम्यग्ज्ञान जानना चाहिए।

## सम्यग्ज्ञानी प्रमाणभूत

**जो को अवि सण्णाणी, पमाणभूदो सो चिय मण्णेज्जा।**
**अपमाणभूदसत्थं, पुरिसं च णेव कया वि तहा॥13॥**

**अर्थ**–जो कोई भी सम्यग्ज्ञानी है वह निश्चय से प्रमाणभूत है। अप्रमाणभूत शास्त्र व पुरुषों को कदापि भी नहीं मानना चाहिए।

## केवलज्ञान ही प्रमाण

**जे के वि खइय-णाणी, ते खलु केवलणाणी मुण्णिज्जंति।**
**पुण्णणाणं पमाणं, अण्णाणमप्पमाणभूदं॥14॥**

**अर्थ**–जो कोई भी क्षायिक ज्ञानी हैं वे निश्चय से केवलज्ञानी जाने जाते हैं। (केवल) पूर्ण ज्ञान प्रमाण है, अज्ञान अप्रमाणभूत है।

## अप्रमाणिक वचनों का कारण

**मोसकारणं मोहो, मिच्छत्तं वा णाणावरणुदयो।**
**तिण्णियालखेत्तेसुं, मोसवयणं अप्पमाणं हु॥15॥**

**अर्थ**–मोह, मिथ्यात्व या ज्ञानावरण का उदय मृषा (झूठ) का कारण है। तीनकाल व क्षेत्रों में मृषावचन अप्रमाण होते हैं।

**रायदोसहस्सादी, वियारभावा वि मोसकारणं दु।**
**वित्थरेण जाणेज्जा, वित्थार-रुइ-सिस्सा इत्थं॥16॥**

**अर्थ**–विस्तार से राग, द्वेष, हास्यादि विकार भाव भी मृषा का कारण हैं। इस प्रकार विस्तार रुचि वाले शिष्यों को जानना चाहिए।

## जिनेंद्रदेव प्रमाणभूत

**वीयराय-सव्वण्हू, हिदोवदेसी सय पमाणभूदो।**
**जं गयरायदोसो दु, अपमाणत्त-कारणं तं ण॥17॥**

**अर्थ**—राग व द्वेष से रहित जिनेंद्र देव के अप्रमाणत्व का कारण नहीं है। इसीलिए वीतरागी सर्वज्ञ व हितोपदेशी जिनेंद्र देव सदा प्रमाणभूत हैं।

## वचन योग युक्त जीव

**सव्वे थावरजीवा, णियमेणं कायजोगसंजुत्ता।**
**तसा वयणजोगेण वि, णेया सण्णी हु मणसहिदा॥18॥**

**अर्थ**—सभी स्थावरजीव नियम से काय योग से संयुक्त होते हैं। त्रस वचनयोग से भी युक्त हैं व मन सहित निश्चय से संज्ञी जानने चाहिए।

**दोण्णि-इंदियाइ-सव्व-तसजीवाणं होदि वयणसत्ती।**
**जं तेसु वयण-पाणो, रसणिंदियादी हवंति खलु॥19॥**

**अर्थ**—दो इंद्रिय आदि सभी त्रस जीवों के वचन शक्ति होती है क्योंकि उनमें निश्चय से वचन प्राण व रसनेन्द्रिय आदि होती हैं।

**वियलिंदियासण्णीण, होज्ज णियमेण अणक्खरी भासा।**
**सण्णि-णर-तिरियाणं च, अक्खरी अणक्खरी उहया।।20।।**

**अर्थ**–विकलेन्द्रिय (दो, तीन, चार इंद्रिय) व असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों की नियम से अनक्षरी भाषा होती है। तथा संज्ञी मनुष्य व संज्ञी तिर्यंचों के अक्षरी व अनक्षरी दोनों भाषा होती हैं।

**सुर-माणुस-णेरइया, सद्दरूवभासं वदंति णियमा।**
**सद्दो हवेदि सुदस्स, अंसो णेव इयर-णाणस्स।।21।।**

**अर्थ**–शब्द रूप भाषा नियम से देव, मनुष्य व नारकी बोलते हैं। शब्द श्रुतज्ञान का अंश होता है, इतर अर्थात् अन्य ज्ञान का नहीं।

## *संज्ञी हितार्थ समर्थ*

**सण्णी समत्थो सवर-हिदत्थं णेव दु असण्णी कया वि।**
**हिदाय सव्वजीवाण, होज्ज सुह-पविट्ठी जोगाण।।22।।**

**अर्थ**–संज्ञी जीव स्वपर का हित करने में समर्थ हैं किन्तु असंज्ञी जीव कदापि नहीं। हित के लिए सर्व जीवों के योगों की शुभ प्रवृत्ति होनी चाहिए।

## संज्ञी जीव

**सिक्खालावुवदेसा, गहेदुं समत्था जे सण्णी ते।**
**हिदाहिदं जाणेदुं, सुह-हिद-मग्गं पप्पोदुं हि॥23॥**

**अर्थ**–जो शिक्षा, आलाप और उपदेश ग्रहण करने में समर्थ हैं वे संज्ञी जीव कहलाते हैं। वे ही हित-अहित को जानने और शुभ हित मार्ग को प्राप्त करने में समर्थ हैं।

**हिदपहं जाणंतो वि, गच्छदे सण्णी जदि अहिदमग्गे।**
**सो सण्णि होदूण वि, असण्णीव भवभमणजोग्गो॥24॥**

**अर्थ**–यदि संज्ञी जीव हितमार्ग को जानता हुआ भी अहित मार्ग पर गतिमान होता है तो वह संज्ञी होकर भी असंज्ञी के समान है व भव भ्रमण के योग्य है।

## वचन मध्य दीपक

**वयणं मज्झदीवोव्व, पहावेदि जं मणं तहा कायं।**
**वयणाण सुहरूवादु, संभवो वि सुहत्तमण्णाण॥25॥**

**अर्थ**–वचन मध्य दीपक के समान है जो मन व काय को भी प्रभावित करता है। वचनों के शुभ रूप होने से अन्य योगों अर्थात् मन व काय का भी शुभत्व संभव है।

## वक्ता स्वपरकल्याण में समर्थ

**जो को वि सुट्ठु सोदू, सगकल्लाणं करिदुं सक्को सो।**
**जदि होज्ज सो वि वायो, कुव्वेदुं परकल्लाणं वि॥26॥**

**अर्थ**–जो कोई भी श्रेष्ठ श्रोता है वह स्व कल्याण करने में शक्य है और यदि वह वक्ता भी है तो परकल्याण करने में भी समर्थ है।

## वक्ता अधिक श्रोता कम

**लोगे बहुत्त-वाया, अइणूणसोदू ताणवेक्खाए।**
**वियलत्तया वि वाया, सोदिंदियं विणा ण सोदू॥27॥**

**अर्थ**–लोक में बोलने वाले बहुत हैं उनकी अपेक्षा सुनने वाले बहुत कम हैं। सर्व विकलत्रय भी वक्ता हैं किन्तु श्रोता नहीं क्योंकि कर्णेन्द्रिय के बिना श्रोता नहीं हो सकता।

## कैसे बोलें-सुनें?

**जे के वि सण्णि जीवा, विज्जंते चउगदीसु णियमेणं।**
**सगवर-हिदत्थं कहं, वदेज्ज सुणेज्ज ते णो णंति॥28॥**

**अर्थ**–जो कोई भी संज्ञी जीव नियम से चार गतियों में विद्यमान हैं वे प्रायः (बहुधा) नहीं जानते कि स्वपर हित के लिए किस प्रकार बोलना चाहिए व किस प्रकार सुनना चाहिए।

## बोलना-सुनना भी कला

**णारीए चउसट्ठी, बिसत्तरी कला णरस्स पसिद्धा।**
**अण्णा अणंतकला वि, सवरहिदकरा सुवयण-कला।।29।।**

**अर्थ**–नारी की चौंसठ व नर की बाहत्तर कलाएँ प्रसिद्ध हैं। अन्य अनंत कलाएँ भी हैं। स्वपर का हित करने वाली सुवचन कला है।

**वत्थु-पावणं सुलहो, महादुल्लहो तस्स वरुवजोगो।**
**वयण-सवणाण तहेव, कला हु अइदुल्लहा लोए।।30।।**

**अर्थ**–वस्तु प्राप्त करना सुलभ है किन्तु उसका श्रेष्ठ उपयोग महादुर्लभ है उसी प्रकार बोलने व सुनने की कला लोक में अति दुर्लभ है।

## प्रवृत्ति में अंतर

**सव्वणराणं होज्जा, णयण-मुह-कण्णादी एगठाणे।**
**णवरि महाणंतरो य, पविट्ठीसु णाणि-मूढाणं।।31।।**

**अर्थ**–सभी नरों के नेत्र, मुख, कर्ण आदि एक स्थान पर होते हैं। विशेषता यह है कि ज्ञानी व मूर्ख की प्रवृत्ति में महान् अंतर होता है।

## वक्तव्य

**हिदकरं सच्चं मिदं, महुरं पमाणिय-वयणं वदेज्जा।**
**सवरभववड्ढगा ते, जे वदंते इदर-वयणं हु॥32॥**

**अर्थ**–निश्चय से हितकर, सत्य, मित, मधुर और प्रमाणिक वचन ही बोलने चाहिए। जो इसके इतर (असत्यादि) वचन बोलते हैं वे स्वपर संसारवर्द्धक ही हैं।

## उत्कृष्ट वचन

**असंख-सद्दा अणेग-भासासु विज्जंति अणेगविहाण।**
**सज्जणा वदेज्ज वरं, ण कुणदु किवणत्तं वयणेसु॥33॥**

**अर्थ**–अनेक प्रकार के असंख्य शब्द अनेक भाषाओं में विद्यमान हैं। सज्जनों को उत्कृष्ट बोलना चाहिए। वचनों में कृपणता नहीं करनी चाहिए।

## वचनाकांक्षी

**कडुग-मिट्ठंब-रस-जुद-फलाणि जह तह फलंति इमरुक्खे।**
**जो जस्स रसाकंखी, सो गहदे तं फलं वयणं॥34॥**

**अर्थ**–जैसे एक ही वृक्ष पर कड़वे, खट्टे और मीठे रस से युक्त फल आते हैं जो जिस रस का आकांक्षी है वह नियम से उसी को ग्रहण करता है। उसी प्रकार वचन भी। (अर्थात् जो शिष्ट या अशिष्ट जिस वचन का आकांक्षी है वह उसी को ग्रहण करता है।)

## मधुर बोल

**जह कोइलो हु अंबं, कागो गहदे णिंबफलं लोए।**
**तहेव सुणंति वदंति, वरा महुर-मियरा कडुगं च॥35॥**

**अर्थ**–लोक में जैसे कोयल आम्र को व कौआ नीम के फल अर्थात् निंबोली को ग्रहण करता है उसी प्रकार श्रेष्ठ मनुष्य मधुर वचन सुनते व बोलते हैं और इतर (जघन्य) मनुष्य कड़वा बोलते व सुनते हैं।

## वचन से कीमत

**मुहं दु आवण-रूवो, ठिद-वत्थुंव तम्हि सया वयणं हि।**
**आवणे उग्घाडिदे, वज्ज-कोलाण वा जाणेज्ज॥36॥**

**अर्थ**–व्यक्ति का मुख दुकान के समान है व वचन उसमें स्थित वस्तु के समान हैं। दुकान खोलने पर ही जाना जाता है कि वह हीरे की है या कोयले की।

## मनचाहे को अनचाहा

**जो वददि मणकंखिदं, सव्वत्थ सया विणा विवेगेणं।**
**कुवयणमणाकंखिदं, अण्णजणेहि खलु सुणेदि सो॥37॥**

**अर्थ**–जो सर्वत्र सदा बिना विवेक के मन चाहा बोलता है वह निश्चय से अन्य जनों के द्वारा कुवचन व अनचाहा सुनता है।

## वचनों से मानापमान

**कोइलो देदि किंचिवि, ण धणाइ-दव्वं हरदि णो कागो।**
**लहंति माणवमाणं, सग-सग-वयणेहिं लोयम्मि॥38॥**

**अर्थ**–कोयल किसी के लिए कुछ भी देती नहीं और कौआ धनादि द्रव्य हरता नहीं। लोक में जीव अपने-अपने वचनों से मान-अपमान प्राप्त करते हैं।

## सुवचन

**सीयल-संतिदायगं, मलखालगं णिज्झरोव्व सुवयणं।**
**सच्चपयासगं सवर-हिदकरं बोहगं मण्णे य॥39॥**

**अर्थ**–झरने के समान शीतल, शांतिदायक, मलक्षालक, सत्यप्रकाशक, स्वपर का हित करने वाले व बोध कराने वाले वचन ही लोक में सुवचन माने जाते हैं।

## चतुर्विध वचन

**वयणं चउविहं सच्च-मसच्चमुहयमणुहयववयणाइं च।**
**जस्स होदि जह पइडी, सो तहेव पजंपदि वयणं॥40॥**

**अर्थ**–चार प्रकार के वचन जानने चाहिए–सत्य, असत्य, उभय और अनुभय। जिसकी जैसी प्रकृति होती है वह उसी प्रकार के वचन बोलता है।

## वक्ता से वचन प्रमाणिक

**वायम्मि पमाणियम्मि, तस्स वयणाणि हि पमाणभूदाणि।**
**मूढोव्व सो वि मण्णे, पमाणहीणं वयणं जस्स।।41।।**

**अर्थ**–वक्ता के प्रमाणिक होने पर ही उसके वचन प्रमाणभूत होते हैं। जिसके वचन प्रमाणहीन होते हैं वह मूर्ख के समान माना जाता है।

## शब्दाभिप्राय

**पोग्गलसद्दो सक्को, भावं परिअट्टिदुं हु जीवाणं।**
**सवर-हिदत्थं तम्हा, वददु हिदमिदप्पियवयणाणि।।42।।**

**अर्थ**–जीवों के भाव को परिवर्तित करने में पुद्गल शब्द निश्चय से समर्थ हैं इसीलिए स्वपर हित के लिए हित, मित और प्रिय वचन बोलने चाहिए।

## हित वचन

**मुक्खकारणं जं तं, लहेदुं सस्सद-सीलं अप्पस्स।**
**विणासिदुं भवभमणं, कम्मक्खय-णिमित्तं हिदं दु।।43।।**

**अर्थ**–जो आत्मा के शाश्वत स्वभाव को प्राप्त कराने में मुख्य कारण है, भव भ्रमण के विनाश व कर्मक्षय में निमित्त है वह हित है।

## मित वचन

**एयसद्दो समत्थो, जदि पगासणाए भावाणं तो।**
**वदेज्ज णो बेसद्दा, मिद-रीदी भासिदा बुहेहि।।44।।**

**अर्थ**–यदि भावों का प्रकटीकरण करने में एक शब्द ही समर्थ है तो दो शब्द नहीं बोलने चाहिए। वह बुधजनों के द्वारा मित रीति कही गई है।

**सज्जणा उवउंजंति, घिदादिं बहुमुल्लममियं व रसं।**
**जहा तह समिदभावं, सत्थगं सद्दं वदेज्ज सय।।45।।**

**अर्थ**–जिस प्रकार सज्जन घृत आदि बहुमूल्य अमृत के समान रस का उपयोग करते हैं उसी प्रकार सदा मित भाव से युक्त, सार्थक (अर्थकारी) शब्द बोलने चाहिए, अनर्थक नहीं।

## प्रिय वचन

**जेहि वयणेहि हवेदि, सवर-चित्त-सीयलो पियवयणाणि।**
**सुहाणंद-कारणं च, जाणि ताणि हु पावक्खयस्स।।46।।**

**अर्थ**–जिन वचनों के द्वारा स्व-पर का चित्त शीतल होता है, जो सुख, आनंद और पाप क्षय का कारण हैं वे प्रिय वचन हैं।

## वक्तव्य

**चित्तस्स इट्ठ-रूवा, कण्णप्पिया खलु होंति जे णिच्चं।**
**सद्दा लोयववहारणुऊला ते वददु संतीइ।।47।।**

**अर्थ**–जो शब्द नित्य चित्त के लिए इष्ट रूप, कर्ण प्रिय व निश्चय से लोक व्यवहार के अनुकूल होते हैं, शांति के लिए उन्हें ही सदा बोलना चाहिए।

## सुवचन फल

**जत्थ वदणमावसियं, हिद-मिद-पिय-सिट्ठिट्ठ-वयणं तत्थ।**
**वदेज्ज मंगल-संती, णंद-समिद्धी वसदे तत्थ।।48।।**

**अर्थ**–जहाँ बोलना आवश्यक हो वहाँ हित, मित, प्रिय, शिष्ट व इष्ट वचन बोलने चाहिए। जहाँ ऐसे वचन बोले जाते हैं वहाँ मंगल, शांति, आनंद व समृद्धि का निवास होता है।

## सापेक्ष वचन फल

**णासिदुं मोहतिमिरं, णाणुज्जोदिदुं सावेक्खवयणं।**
**सक्कं संजम-हेदू, सव्वविवादं परिहरिदुं च।।49।।**

**अर्थ**–सापेक्ष वचन मोहांधकार का नाश करने, ज्ञान का प्रकाश करने और सर्व विवादों का परिहार करने में समर्थ हैं वह संयम का हेतु हैं।

## निरपेक्ष वचन फल

**णिरवेक्ख-वयणाइं च, हेदू विवाद-कलह-दुहाण जत्थ।**
**वदिज्जंति तत्थ णेव, वसदि धम्म-णाण-तव-लच्छी॥50॥**

**अर्थ**–निरपेक्ष वचन विवाद, कलह और दु:ख का कारण हैं जहाँ ऐसे वचन बोले जाते हैं वहाँ धर्म, ज्ञान, तप व लक्ष्मी का वास नहीं होता।

## जिनवचन से सम्यक्त्वादि संभव

**जिणवयणेण विणा णो, संभवो सम्मद्दंसणं णाणं।**
**चरियं झाणं धम्मो, तवो तच्चचिंतणं भत्ती॥51॥**

**अर्थ**–जिनवचन के बिना सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, ध्यान, धर्म, तप, तत्त्वचिंतन, भक्ति आदि संभव नहीं है।

## देशना लब्धि

**देसणालद्धी होदि, मज्झदीवोव्व हु पंचलद्धीसुं।**
**विणा देसणं ण को वि, समत्थो लहिदुं सम्मत्तं॥52॥**

**अर्थ**–पाँच लब्धियों में देशना लब्धि मध्य दीपक के समान होती है। देशना के बिना कोई भी सम्यक्त्व प्राप्त करने में समर्थ नहीं है।

## सर्व हितार्थ देशना

**गदरायि-सव्वण्हूहि, णिस्सरिदा चिय जिणवरदेवेहिं।**
**देसणा सया णेया, सुहिदत्थं भव्वजीवाणं।।53।।**

**अर्थ**–वीतरागी, सर्वज्ञ जिनवर देवों के द्वारा निःसरित देशना सदा भव्य जीवों के हितार्थ जानना चाहिए।

## द्रव्यादि देशना

**छद्दव्व-पणत्थिकाय-णवपदत्था तहा सत्ततच्चाणि।**
**देसणा होदि सिं तं, वक्खाणेमि सवर-हिदत्थं।।54।।**

**अर्थ**–छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, नवपदार्थ तथा सात तत्त्व होते हैं। उनकी ही देशना होती है। स्वपर हित के लिए मैं (आचार्य वसुनंदी मुनि) उनका व्याख्यान करता हूँ।

## द्रव्य बोधार्थ सम्यक्त्वावश्यक

**दव्वं जाणिदुं विणा, को वि ण सक्को लहिदुं सम्मत्तं।**
**सवरणाणेणं विणा, होज्ज विस्से को विण्णाणी।।55।।**

**अर्थ**–द्रव्य को जाने बिना कोई भी सम्यक्त्व प्राप्त करने में समर्थ नहीं है। स्व-पर ज्ञान के बिना विश्व में कौन विशेष ज्ञानी हो सकता है? अर्थात् कोई नहीं।

## द्रव्य के मुख्य भेद

**संपुण्ण-विस्सम्मि खलु, दुविहं दव्वं अणाइयालादो।**
**जीवमजीवं जेणं, भणिदं जिणं तं णमंसामि॥56॥**

**अर्थ**–जिनके द्वारा संपूर्ण विश्व में अनादिकाल से दो प्रकार के द्रव्य जीव व अजीव कहे गए हैं, उन जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार हो।

## गुणादि कथन प्रतिज्ञा

**गुणपज्जयसहावेहि, विणा पुण्ण-वण्णणं णो दव्वस्स।**
**संभवो तं वोच्छामि, लक्खणगुणपज्जयसहावं॥57॥**

**अर्थ**–गुण, पर्याय और स्वभाव के बिना द्रव्य का पूर्ण वर्णन संभव नहीं है इसीलिए द्रव्य के लक्षण, गुण, पर्याय और स्वभाव को कहता हूँ।

## द्रव्य लक्षण

**दव्वस्स सदो सीलो, मूललक्खणं जिणुत्तं समयम्मि।**
**उप्पादव्वयधुवत्त-जुदं गुणपज्जयेहि दव्वं॥58॥**

**अर्थ**–जिनेन्द्र प्रभु ने शास्त्र में द्रव्य का मूललक्षण या स्वभाव सत् कहा है। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य से युक्त सत् है। गुण-पर्यायों से युक्त द्रव्य है।

## द्रव्य के 6 भेद

**जीवो पोग्गल-धम्माधम्मा खं कालो छव्विह-दव्वो।**
**पोग्गलविजुदा सव्वा, दव्वा हु अमुत्तिगा णेया॥59॥**

**अर्थ**–जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश व काल ये छः प्रकार के द्रव्य हैं। पुद्गल के अतिरिक्त सभी द्रव्य अमूर्त्तिक जानने चाहिए।

## शुद्धाशुद्ध द्रव्य

**जीवाणंताणंता, विज्जंति लोयम्मि सुद्धासुद्धा।**
**पोग्गला अवि तहेव य, चत्तारि हु सस्सदा सुद्धा॥60॥**

**अर्थ**–शुद्ध व अशुद्ध अनंतानंत जीव लोक में विद्यमान हैं। उसी प्रकार पुद्गल भी शुद्ध व अशुद्ध रूप विद्यमान है। अन्य चार द्रव्य (धर्म, अधर्म, आकाश व काल द्रव्य) शाश्वत शुद्ध हैं।

## जीवाजीव

**पणविह-मजीवदव्वं, पोग्गल-धम्माधम्मा खं कालो।**
**चेयणजुत्तो जीवो, अजीवो खलु तव्विवरीओ॥61॥**

**अर्थ**–चेतना युक्त निश्चय से जीव है और उसके विपरीत अजीव है। अजीव द्रव्य पाँच प्रकार का है–पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल।

## द्विविध चेतना

**चेयणा बेविहा खलु, दंसण-णाणाण तहा भेयादो।**
**दंसणं णिव्वियप्पं, णेयं सवियप्पं णाणं च॥62॥**

**अर्थ**–दर्शन व ज्ञान के भेद से चेतना दो प्रकार की होती है। निश्चय से दर्शन निर्विकल्प और ज्ञान सविकल्प जानना चाहिए।

## दर्शनोपयोग व ज्ञानोपयोग

**चक्खु-अचक्खू ओही, केवलं चदुहा दंसणुवजोगो।**
**णाणं अट्ठवियप्पं, तिण्णि मिच्छा पंचसम्मं च॥63॥**

**अर्थ**–दर्शनोपयोग चार प्रकार का है–चक्षु, अचक्षु, अवधि व केवल दर्शन। ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है–तीन मिथ्या व पाँच सम्यक्।

**मदी सुदोही णाणं, होंति भेयादो सम्ममिच्छाणं।**
**मणपज्जयं केवलं, सम्मं चिय होंति णियमेणं॥64॥**

**अर्थ**–मति, श्रुत व अवधि ज्ञान सम्यक् और मिथ्या भेद रूप होते हैं। अर्थात् सम्यक् रूप मति, श्रुत, अवधि व मिथ्या रूप कुमति, कुश्रुत, कुअवधि। मनःपर्यय और केवलज्ञान नियम से सम्यक् होते हैं।

**छउमत्थ-जीवाणं च, ति-उवजोगादो होज्ज सत्तंतं।**
**सव्वण्हु-देवाणं हु, बे-खयियुवजोगा णियमेण॥65॥**

**अर्थ**—छद्मस्थ जीवों के तीन से सात उपयोग तक होते हैं या हो सकते हैं। (कुमति ज्ञान, कुश्रुत ज्ञान, अचक्षुदर्शन ये तीन उपयोग, कुमति, कुश्रुत, चक्षु, अचक्षु वा मति, श्रुत ज्ञान, चक्षु, अचक्षु दर्शन ये चार उपयोग, कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ज्ञान, चक्षु, अचक्षु दर्शन ये पाँच उपयोग, मति, श्रुत, अवधिज्ञान, चक्षु-अचक्षु-अवधि दर्शन ये छः उपयोग तथा मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय ज्ञान व चक्षु-अचक्षु-अवधि दर्शन ये सात उपयोग।) सर्वज्ञ देवों के नियम से दो क्षायिक उपयोग होते हैं।

## क्रम व युगपत् उपयोग

**दंसण-पुव्वं णाणं, छउमत्थेसुं च पविट्टी कमेण।**
**केवलणाणि-जिणेसुं, जुगवं होदि संसयो णत्थि॥66॥**

**अर्थ**—ज्ञान दर्शनपूर्वक होता है। छद्मस्थों में इनकी प्रवृत्ति क्रम से होती है। केवलज्ञानी जिनों में इनकी प्रवृत्ति युगपत् होती है। इसमें संशय नहीं है।

**होज्ज खइयभावादो, जुगव मुवजोगा केवलणाणिस्स।**
**खओवसमिय-भावादु, कमसो तहा छउमत्थाणं॥67॥**

**अर्थ**—क्षायिकभाव होने से केवलज्ञानी के उपयोग युगपत् होते हैं और क्षायोपशमिक भाव होने से छद्मस्थों के उपयोग क्रमशः होते हैं।

## जीव भेद

**सुद्धासुद्ध-भेयेण, जीवो दुविहो सया मुणेदव्वो।**
**कम्मजुदा संसारी, असुद्धा तह सिद्धा सुद्धा॥68॥**

**अर्थ**–शुद्ध व अशुद्ध के भेद से जीव सदा दो प्रकार के जानने चाहिए। कर्म से युक्त संसारी अशुद्ध व सिद्ध शुद्ध जीव हैं।

## पुद्गल लक्षण

**चेयणहीणो मुत्तो, फास-रस-गंध-वण्णेहिं जुत्तो।**
**पोग्गलो भणिदो सो वि, जीवाण हिदाहिद-णिमित्तं॥69॥**

**अर्थ**–चेतना से हीन, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण से युक्त, मूर्त्तिक पुद्गल कहा जाता है। वह भी जीवों के हित व अहित में निमित्त है।

## पुद्गल भेद

**पोग्गलो दुविहो अणू, खंधो अवि चत्तारि-भेया तस्स।**
**देस-पदेस-संजुदा छव्विहो तह अण्णविहीए॥70॥**

**अर्थ**–पुद्गल दो प्रकार का है–अणु व स्कंध। उस पुद्गल के चार भेद हैं–अणु, स्कंध, देश व प्रदेश। तथा अन्य विधि से छः प्रकार का भी है।

**थूलथूलं च थूलं, थूलसुहुमं सुहुमथूलं णेया।**
**सुहुमं सुहुमसुहुमं च, छब्भेया लोयप्पसिद्धा॥71॥**

**अर्थ**–स्थूल-स्थूल, स्थूल, स्थूल-सूक्ष्म, सूक्ष्म-स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्म-सूक्ष्म ये लोक में प्रसिद्ध पुद्गल के छः भेद जानने चाहिए।

## *स्थूल-स्थूल*

**पुढविं पहाण-कट्ठं, इच्चादिं विखंडिदं णेव होच्चु।**
**जुंजंति चिण्णं विणा, जे ते थूलथूलं सव्वं॥72॥**

**अर्थ**–जो पृथ्वी, पाषाण, काष्ठ इत्यादि खंडित होकर बिना चिह्न अर्थात् विग्रह, अंतर या दरार के नहीं जुड़ते, वे सभी स्थूल-स्थूल जानने चाहिए।

## *स्थूल*

**दुद्ध-तिल्ल-णीर-तक्क-रसाइ-तरलपदत्थेसुं जेसुं।**
**खंडिदेसु जुंजंते, विणा चिण्णं थूलं पुण ते॥73॥**

**अर्थ**–जो दूध, तेल, नीर, मट्ठा, रसादि तरल पदार्थों के खंडित होने पर पुनः बिना चिह्न या दरार के जुड़ जाते हैं (अर्थात् एकमेक हो जाते हैं) वे स्थूल जानने चाहिए।

## स्थूल-सूक्ष्म

**दिट्ठि-अवेक्खाए खलु, थूले वि जस्स गहणं सक्को णो।**
**छाया-पडिबिंबादी, थूल-सुहुमं पोग्गलो जाण॥74॥**

**अर्थ**–दृष्टि की अपेक्षा से स्थूल होने पर भी जिसका ग्रहण करना शक्य नहीं है ऐसे छाया, प्रतिबिंब आदि स्थूल-सूक्ष्म पुद्गल जानो।

## सूक्ष्म-स्थूल

**चक्खु-इंदियेण विणा, विसया जे खलु सेसिंदियाणं दु।**
**ते सव्वा सुहुम-थूल-पोग्गला सया मुणेदव्वा॥75॥**

**अर्थ**–जो चक्षु इंद्रिय के बिना शेष इन्द्रियों के विषय हैं वे सभी निश्चय से सूक्ष्म-स्थूल पुद्गल जानने चाहिए।

## सूक्ष्म

**णोकम्माहार-कम्म-भासामणादीणं च वग्गणा दु।**
**सव्वदा हि पोग्गलस्स, सुहुमं भेयं विआणेज्जा॥76॥**

**अर्थ**–नोकर्म, आहार, कर्म, भाषा व मन आदि की वर्गणा सदा पुद्गल का ही सूक्ष्म भेद जानना चाहिए।

## सूक्ष्म-सूक्ष्म

**पोग्गलस्स हु अविभागि-अंसो परमाणू सय णादव्वो।**
**सुहुम-सुहुमं विंदंति, जिणसमयम्मि तं समयण्हू॥77॥**

**अर्थ**–पुद्गल का अविभागी अंश सदा परमाणु जानना चाहिए। जिनागम में समयज्ञ (आत्मा को जानने वाले) उस परमाणु को सूक्ष्म-सूक्ष्म कहते हैं।

## पुद्गल की दस पर्याय

**अण्णा अवि पोग्गलस्स, दस-पज्जाया आगमेण णेया।**
**दव्वेण विणा कया वि, पज्जाया णेव संभवो य॥78॥**

**अर्थ**–आगम से पुद्गल की अन्य दस पर्याय भी जाननी चाहिए। द्रव्य के बिना पर्याय कभी भी संभव नहीं है।

**थूलो सुहुमो सद्दो, भेदसंठाणबंधछाया तहा।**
**आदवुज्जोदो तमो, दसपज्जाया मुणेदव्वा॥79॥**

**अर्थ**–स्थूल, सूक्ष्म, शब्द, भेद, संस्थान, बंध, छाया, आतप, उद्योत तथा तम ये पुद्गल की दसपर्याय जाननी चाहिए।

## पुद्गल स्थूल व सूक्ष्म

**बादर-थूल-उरालो, वा जो को वि लहुविसालकायो य।**
**पोग्गलजोगेण विणा, सो दव्वो दिट्ठिगम्मो णो॥80॥**

**अर्थ**–जो कोई भी द्रव्य बादर, स्थूल, उराल अथवा लघु व विशाल काय है वह पुद्गल के योग के बिना दृष्टिगम्य नहीं होता।

## सापेक्ष व अंत्यस्थूल

**बहुथूलाणि वत्थूणि, लोए देक्खिज्जंति बहुपयारा।**
**थूलाथूल-वत्थूणि, होंति सावेक्खाए णियमा॥81॥**

**अर्थ**–लोक में बहुत प्रकार की बहुत सी स्थूल वस्तुएँ देखी जाती हैं। सभी वस्तुएँ नियम से सापेक्ष स्थूल व अस्थूल होती हैं।

**महाखंधंतथूलो, वादो णो थूलो को वि पदत्थो।**
**परोप्परे तुल्लाए, वत्थुं चिय सावेक्खथूलो॥82॥**

**अर्थ**–महास्कंध अंत्यस्थूल है। उससे स्थूल कोई भी पदार्थ नहीं है। परस्पर तुलना में प्रत्येक वस्तु सापेक्ष स्थूल है।

## सापेक्ष व अंत्यसूक्ष्म

**सुहुममक्खागोयरं, जह बहुविह-वग्गणा कम्माणि वा।**
**सावेक्खसुहुमं होज्ज, वि अंतसुहुमो परमाणू हि॥83॥**

**अर्थ**–सूक्ष्म, इंद्रियों के अगोचर जैसे बहुविध वर्गणा व कर्मादि सापेक्ष सूक्ष्म होते हैं। परमाणु निश्चय से अंत्यसूक्ष्म है।

**ववहारो ण संभवो, कस्सिं वि दव्वम्मि थूल-सुहुमाण।**
**मेत्तं पोग्गलदव्वे, हवेदि थूलाइ-ववहारो॥84॥**

**अर्थ**–किसी भी द्रव्य में स्थूल, सूक्ष्म का व्यवहार संभव नहीं है। मात्र पुद्गल द्रव्य में स्थूलादि का व्यवहार होता है।

## शब्द

**सव्वज्झुणी हु पोग्गल-रूवा णेव होज्जा अण्णरूवा।**
**अंतरजप्पो वि सद्द-रूवादु पोग्गलपज्जाओ॥85॥**

**अर्थ**–सभी ध्वनि पुद्गल रूप होती हैं, अन्य रूप नहीं होती। अंतर्जल्प भी शब्द रूप होने से पुद्गल की पर्याय है।

## भेद

**भेदप्पभेदखंडा, छिंदण-जोयण-मिस्सणादी तहा।**
**संभवो पोग्गलम्मि हु, णेव अण्ण-सुद्ध-दव्वेसुं॥86॥**

**अर्थ**–भेद, प्रभेद, खंड करना, छेदना, जोड़ना तथा मिश्रण आदि पुद्गल में ही संभव है, अन्य व शुद्ध द्रव्यों में कदापि नहीं।

## संस्थान

**पत्तेयं पोग्गलियं, वत्थुमाकिदिजुत्तं होदि णियमा।**
**णिग्गंथसासणे सा, आकिदी भणिदा संठाणं॥87॥**

**अर्थ**–प्रत्येक पौद्गलिक वस्तु नियम से आकृति युक्त होती है। निर्ग्रंथ शासन में वह आकृति संस्थान कही गई है।

## बंध

**पोग्गलाणं संभवो, परोप्परे हु अणेगविहो बंधो।**
**ववहारेणं बंधो, मुत्तादु वि सकम्मजीवस्स॥88॥**

**अर्थ**–पुद्गलों का ही परस्पर में अनेक प्रकार का बंध होता है। कर्म सहित जीव के व्यवहार से मूर्त्त रूप होने से बंध संभव है।

## परमाणु बंध

**णिद्ध-लुक्खाणं दोण्णि-गुण-अहिय-परमाणूणं बंधो हि।**
**संभवो समजादीय-विसमजादीयाणं अहवा॥89॥**

**अर्थ**–समजातीय अथवा विषमजातीय दो अधिक गुण वाले स्निग्ध-रूक्ष परमाणुओं का बंध ही संभव है।

**जहण्ण-समगुण-संजुद-पोग्गलपरमाणू अहवा कया वि।**
**णो बंधिदुं समत्थो, ते ण होज्ज मिलित्ता खंधो॥90॥**

**अर्थ**–जघन्य गुण या समान गुण से युक्त पुद्गल परमाणु कभी भी बंधने में समर्थ नहीं होते। वे मिलकर कभी स्कंध नहीं होते।

## छाया

**छाया-पडिबिंब-पडिच्छाया बिंब-पडिबिंबं गगणम्मि।**
**चिण्णं छायाचित्तं, पोग्गलो सया मुणेदव्वो॥91॥**

**अर्थ**–छाया, प्रतिबिंब, प्रतिछाया (छाया की छाया) बिंब का भी प्रतिबिंब, आकाश में प्रतीक चिह्न (प्रतीकोपासना), छायाचित्रादि सब पुद्गल जानना चाहिए।

## आतप

**पुढविकाइयेसु हवदि, अक्काइ-विमाण-विज्जंतेसु जो।**
**पोग्गलपज्जाओ सो, आदवणामकम्मस्सुदयो॥92॥**

**अर्थ**–सूर्यादि विमान में विद्यमान पृथ्वीकायिक जीवों में जो आतप नामकर्म का उदय होता है वह भी पुद्गल की पर्याय है।

## उद्योत

**सोमाइ-विमाणेसुं, विज्जमाण-पुढविकाइयेसुं जो।**
**उज्जोदकम्मुदयो वि, जाण पोग्गल-पज्जाओ सो॥93॥**

**अर्थ**–चंद्रादि विमानों में विद्यमान पृथ्वीकायिक जीवों में जो उद्योत नाम कर्म का उदय होता है वह भी पुद्गल की पर्याय है।

## तम

**अत्थम्मि अणुदये वा, जोदिस-विमाणम्मि होदि तमो जो।**
**सो अवि पोग्गलो जिणुद्दिट्ठो जं संकणीयो णो॥94॥**

**अर्थ**–ज्योतिष विमान के अनुदय या अस्त होने पर जो अंधकार होता है वह भी पुद्गल है ऐसा जिनेंद्र भगवान् ने कहा है अतः शंका नहीं करनी चाहिए।

## धर्म द्रव्य

**गमिदुं होदि णिमित्तं, गच्छमाण-जीव-पोग्गलाणं जो।**
**एगाखंडो लोए, सो विज्जंत-धम्मदव्वो हु॥95॥**

**अर्थ**–जो चलते हुए जीव व पुद्गलों को चलने में निमित्त होता है वह निश्चय से लोक में विद्यमान एक व अखंड धर्मद्रव्य है।

## अधर्म द्रव्य

**ठाणजुद-पोग्गलाणं, जो जीवाणं च ठाण-सहयारी।**
**सो खलु अधम्म-दव्वो, एगाखंडो तह लोयम्मि॥96॥**

**अर्थ**–जो ठहरते हुए जीव व पुद्गलों के ठहरने में सहकारी कारण है वह लोक में निश्चय से एक तथा अखंड अधर्म द्रव्य है।

## आकाश द्रव्य

**सव्वदव्वाण देदुं, अवगाहणं समत्थो खलु जो सो।**
**एगाखंडायासो, दुवियप्पो लोयालोयो य॥97॥**

**अर्थ**–जो सभी द्रव्यों को अवगाहन देने में समर्थ है वह निश्चय से एक व अखंड आकाश द्रव्य है। वह दो प्रकार का है–लोकाकाश और अलोकाकाश।

## व्यवहार व निश्चय काल

**कालो दव्व-वट्टगो, ववहारो परिणमण-हेदु-इदरो।**
**एयपदेसी संखावेक्खाए चिय असंखेज्जा॥98॥**

**अर्थ**–व्यवहार काल द्रव्य का वर्त्तन करने वाला है और परिणमन का कारण इतर अर्थात् निश्चय काल है। काल एकप्रदेशी है व संख्या की अपेक्षा असंख्यात हैं।

## निश्चय-काल

**पडिसमयम्मि पत्तेय-दव्वम्मि परिवट्टणं हवंतं दु।**
**णिच्छयकालो वयणातीदो सव्वदा णादव्वो॥99॥**

**अर्थ**–प्रत्येक द्रव्य में प्रतिसमय होने वाला परिवर्तन निश्चय काल है। वह सर्वदा वचनातीत जानना चाहिए।

## व्यवहार काल

**समयावली उस्सास-पाण-थोग-लव-घडिगा मुहुत्तो य।**
**अहोरत्ती य पक्खो, मासो रिदू अयणो वस्सो॥100॥**
**जुगो पुव्वंग-पुव्वा, णिउदंग-णिउद-कुमुदंगा कुमुदो।**
**पउमंगो पउमो तह, णलिणंगं-णलिण-कमलंगा॥101॥**
**कमल-तुट्टंग-तुट्टा, अट्टंगट्टममंगममूहंगा।**
**ऊहो लदंगो लदा, महालदंगो-महालदा-आदी॥102॥**
**असंखेज्जवस्सा चिय, पलिदोवमं सायर-कप्पकालो।**
**ववहार-कालो जाण, अणंताइ-भेय-रूवा चिय॥103॥**

**अर्थ**–समय, आवली, उच्छ्वास, प्राण, स्तोक, लव, घड़ी, मुहूर्त्त, दिनरात, पक्ष, माह, ऋतु, अयन, वर्ष, युग, पूर्वांग, पूर्व, नियुतांग, नियुत, कुमुदांग, कुमुद, पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, कमलांग, कमल, तुट्यांग, तुट्य, अट्टांग, अट्ट, अममांग, अमम, ऊहांग, ऊह, लतांग, लता, महालतांग, महालता आदि संख्यात वर्ष, असंख्यात वर्ष, पल्योपम, सागर, कल्पकाल, अनंतादि भेद रूप व्यवहार काल जानना चाहिए।

**विशेषार्थ**–जो पुद्गल के परमाणु की एक कालाणु से दूसरे कालाणु पर मंद गति से परिणमन के निमित्त से प्रगट हो वह समय है। असंख्यात समय की एक आवली होती है, संख्यात आवलियों का एक उच्छ्वास निःश्वास होता है, दो उच्छ्वास निःश्वासों का एक प्राण होता है। सात प्राणों का एक स्तोक होता है, सात स्तोकों का एक लव होता है। 35 लवों की एक घड़ी होती है।

दो घड़ी का एक मुहूर्त्त होता है, तीस मुहूर्तों का एक दिन रात होता है, पंद्रह दिन रात का एक पक्ष होता है, दो पक्ष का एक मास होता है, दो मास की एक ऋतु होती है, तीन ऋतुओं का एक अयन होता है, दो अयनों का एक वर्ष होता है, पाँच वर्षों का एक युग होता है, दो युगों के दस वर्ष होते हैं, इसमें दस का गुणा करने पर सौ वर्ष होते हैं, इसमें दस का गुणा करने पर हजार वर्ष होते हैं, इसमें दस का गुणा करने पर दस हजार वर्ष होते हैं, इसमें दस का गुणा करने पर एक लाख वर्ष होते हैं, इसमें चौरासी का गुणा करने पर एक पूर्वांग होता है, चौरासी लाख पूर्वांगों का एक पूर्व, चौरासी लाख पूर्वों का एक नियुतांग, चौरासी लाख नियुतांगों का एक नियुत, चौरासी लाख नियुतों का एक कुमुदांग, चौरासी लाख कुमुदांगों का एक कुमुद, चौरासी लाख कुमुदों का एक पद्मांग, चौरासी लाख पद्मांगों का एक पद्म, चौरासी लाख पद्मों का एक नलिनांग, चौरासी लाख नलिनांगों का एक नलिन, चौरासी लाख नलिनों का एक कमलांग, चौरासी लाख कमलांगों का एक कमल, चौरासी लाख कमलों का एक तुट्ट्यांग, चौरासी लाख तुट्टयंगों का एक तुट्ट्य, चौरासी लाख तुट्ट्यों का एक अट्टांग, चौरासी लाख अट्टांगों का एक अट्ट, चौरासी लाख अट्टों का एक अममांग, चौरासी लाख अममांगों का एक अमम, चौरासी लाख अममों का एक ऊहांग, चौरासी लाख

ऊहांगों का एक ऊह, चौरासी लाख ऊहों का एक लतांग, चौरासी लाख लतांगों की एक लता, चौरासी लाख लताओं का एक महालतांग, चौरासी लाख महालतांगों की एक महालता, चौरासी लाख महालताओं का एक शिरः प्रकम्पित, चौरासी लाख शिरः प्रकम्पितों की एक हस्त प्रहेलिका और चौरासी लाख हस्त प्रहेलिकाओं की एक चर्चिका होती है। इस प्रकार चर्चिका आदि को लेकर संख्यात काल कहा गया है। जो वर्षों की संख्या से रहित है वह असंख्येय काल माना जाता है। इसके पल्य, सागर, कल्प तथा अनंत आदि अनेक भेद हैं।[1]

## द्रव्य प्रदेश व संख्या

**असंखपदेसि-जीवो, अपदेसी संखेज्जासंखेज्जा।**
**अणंतपदेसी वा हु, पोग्गलो सया मुणेदव्वो॥104॥**

**अर्थ**–जीव सदा असंख्यातप्रदेशी तथा पुद्गल अप्रदेशी, संख्यातअसंख्यात अथवा अनंत प्रदेशी जानना चाहिए।

**णहं अणंतपदेसी, णवरि असंखेज्ज-पदेसी लोयो।**
**धम्माधम्मा णेया, असंखेज्जा कालेगो तह॥105॥**

**अर्थ**–आकाश अनंतप्रदेशी है किन्तु विशेषता यह है कि लोक असंख्यात प्रदेशी है। धर्म व अधर्म द्रव्य असंख्यात प्रदेशी तथा काल एक प्रदेशी जानना चाहिए।

---

1. हरिवंश पुराण गाथा 19-31

**जीवाणंताणंता, पोग्गला तादो अणंतगुणिदा हु।**
**कालो असंखेज्जा य, अण्ण-दव्वा एगाखंडा॥106॥**

**अर्थ**–जीव अनंतानंत हैं, पुद्गल उससे अनंतगुने हैं, कालाणु असंख्यात हैं तथा अन्य द्रव्य एक व अखंड हैं।

## *अस्तिकाय*

**जेत्तिय-दव्वा लोए, विज्जंति सव्वा अत्थिरूवा ते।**
**बहुपदेसी दव्वा हु, काया मुणेदव्वा बुहेहि॥107॥**

**अर्थ**–लोक में जितने द्रव्य विद्यमान हैं वे सभी अस्ति रूप होते हैं। बहुप्रदेशी द्रव्य बुधजनों के द्वारा काय जानने चाहिए।

**विजहत्तु कालदव्वं, जीवो पोग्गल-धम्माधम्मा खं।**
**णियमादु अत्थिकाया, सद्दहदेरिसो सद्दिट्ठी॥108॥**

**अर्थ**–कालद्रव्य को छोड़कर जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश नियम से अस्तिकाय हैं। सम्यग्दृष्टि ऐसा श्रद्धान करता है।

**दव्वं छब्भेयमिदं, कालहीणो पंचत्थिकाओ खलु।**
**छद्दव्वाण गुणा हं, सगुणं पप्पोदुं वक्खामि॥109॥**

**अर्थ**–द्रव्यों के ये छः भेद हैं। छः द्रव्यों में काल से हीन निश्चय से पाँच अस्तिकाय होते हैं। गुणों की प्राप्ति के लिए छः द्रव्यों के गुणों को कहता हूँ।

# II. गुणाधिकार

## गुण भेद

**पत्तेय-दव्वे होंति, बहुगुणा सगसहावणुसारेणं।**
**बेविहा ते सामण्ण-विसेसाण तहा भेयादो॥110॥**

**अर्थ**–प्रत्येक द्रव्य में अपने स्वभाव के अनुसार बहुत गुण होते हैं। वे सामान्य तथा विशेष के भेद से दो प्रकार के हैं।

## सामान्य गुण

**सामण्णरूवेण सय, जे विज्जंति खलु सव्वदव्वेसुं।**
**सामण्णगुणा भणिदा, ते छव्विहा य जिणसमयम्मि॥111॥**

**अर्थ**–जो सदा सभी द्रव्यों में सामान्य रूप से विद्यमान रहते हैं वे निश्चय से सामान्य गुण कहे गए हैं। वे जिन समय (जिनागम) में छः प्रकार के हैं।

**दव्वासया गुणा खलु, होंति अत्थित्तं तहा वत्थुत्तं।**
**दव्वत्तं-पमेयत्त-मगुरुलहुत्तं पदेसत्तं॥112॥**

**अर्थ**–गुण निश्चय से द्रव्य के आश्रय होते हैं। अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व व प्रदेशत्व। ये छः सामान्य गुण हैं।

## अस्तित्व

**दव्वो सय सदरूवो, अत्थित्त-गुणो सो जाइ सत्तीइ।**
**अत्थिगुण-संजुदो वा, होदि जिणदेवेहिं भणिदो॥113॥**

**अर्थ**–जिस शक्ति से द्रव्य सदा सत्रूप होता है या अस्ति गुण से संयुक्त होता है वह जिनेन्द्र देव के द्वारा अस्तित्व गुण कहा गया है।

## वस्तुत्व

**वत्थुत्त-गुण-जुत्ताणि, होंति णियमेणं वत्थूणि सव्वाणि।**
**वत्थुत्तमत्थकिरिया, सामण्णविसेस-वत्थूइं॥114॥**

**अर्थ**–सभी वस्तुएँ नियम से वस्तुत्व गुण से युक्त होती हैं। वस्तु की अर्थक्रिया वस्तुत्व गुण है। वस्तु सामान्य-विशेषात्मक होती है।

## द्रव्यत्व

**जम्मि चिय उप्पज्जंति, विणस्संति णियमादो पज्जाया।**
**तस्स दव्वभावो दव्वत्तं णो होदि कूडत्थं॥115॥**

**अर्थ**–पर्यायें जिसमें उत्पन्न होती हैं व नष्ट होती हैं नियम से उस द्रव्य का भाव द्रव्यत्व है। द्रव्य कभी कूटस्थ नहीं होता।

## प्रमेयत्व

**पमा अत्थो हु णाणं, जाणिदुं जोग्गो जो सो पमेयो।**
**सव्वदव्वेसु णियमा, पमेयभावो पमेयत्तं॥116॥**

**अर्थ**–प्रमाण का अर्थ ज्ञान है। जो जानने के योग्य है वह प्रमेय है। प्रमेय का भाव प्रमेयत्व है। यह सर्वद्रव्यों में नियम से है।

## अगुरुलघुत्व

**दव्वो होदि कयावि ण, अण्णदव्वरूवो जाइ सत्तीइ।**
**तस्स अगुरुलहु-भावो, अगुरुलहुत्तं मुणेदव्वं॥117॥**

**अर्थ**–जिस शक्ति से द्रव्य कदापि अन्य द्रव्य रूप नहीं होता। उस अगुरुलघु का भाव अगुरुलघुत्व गुण जानना चाहिए।

**अगुरुलहुगो अणंतो, सडविद्धिहाणिरूव-वट्टमाणो।**
**सुहुमो आगमगम्मो, तस्स भावो अगुरुलहुत्तं॥118॥**

**अर्थ**–अनंत, सूक्ष्म, आगमगम्य, षट्हानि वृद्धि रूप वर्तन करने वाला अगुरुलघु गुण है और उसका भाव अगुरुलघुत्व है।

## प्रदेशत्व

**णहस्स जेत्तिय-खेत्तं रुंधदि पोग्गलाणू पदेसो सो।**
**पदेसस्स भावो खलु, पदेसत्तं दु विआणेज्जा॥119॥**

**अर्थ**–आकाश के जितने क्षेत्र को पुद्गल परमाणु रोकता है वह प्रदेश है। उस प्रदेश का भाव निश्चय से प्रदेशत्व जानना चाहिए।

## विशेष गुण

**सामण्णविसेसगुणा, विज्जंते खलु पत्तेयदव्वम्मि।**
**परोप्परे ण विरोही, सव्वेसु णेव तं विसेसा॥120॥**

**अर्थ**–प्रत्येक द्रव्य में निश्चय से सामान्य व विशेष गुण विद्यमान होते हैं। वे परस्पर विरोधी नहीं होते और सब द्रव्यों में नहीं होते इसीलिए विशेष हैं।

## जीव के विशेष गुण

**दंसणणाणसुहाणि य, वीरियादि-विसेसगुणा विज्जंति।**
**पत्तेयजीवम्मि खलु, णेव कयावि सेसदव्वेसु॥121॥**

**अर्थ**–प्रत्येक जीव में निश्चय से दर्शन, ज्ञान, सुख और वीर्यादि विशेष गुण विद्यमान होते हैं। ये शेष अर्थात् पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश व काल द्रव्यों में कभी नहीं होते।

## पुद्गल के विशेष गुण

**विसेसगुणा फास-रस-गंध-वण्णादी य पोग्गलस्स खलु।**
**णेव अण्णदव्वेसुं, हवंति जं तं विसेसा ते॥122॥**

**अर्थ**–स्पर्श, रस, गंध व वर्णादि निश्चय से पुद्गल के विशेष गुण हैं। क्योंकि वे अन्य द्रव्यों में नहीं होते इसीलिए विशेष हैं।

## अन्य द्रव्यों के विशेष गुण

**धम्माधम्माणं गदि-हेदुत्तं ठिदिहेदुत्तं कमसो।**
**णहस्स अवगाहणं च, कालस्स वट्टणं विसेसो॥123॥**

**अर्थ**–धर्म व अधर्म द्रव्य का क्रमशः गतिहेतुत्व व स्थितिहेतुत्व विशेष गुण है। आकाश का अवगाहन और काल का वर्तन गुण विशेष है।

## चार सामान्य या विशेष गुण

**मुत्तत्तममुत्तंतं, चेयणत्तमचेयणत्तं चदुहा।**
**सजादीइ सामण्णा, विसेसगुणा य विजादीए॥124॥**

**अर्थ**–मूर्तत्व, अमूर्तत्व, चेतनत्व और अचेतनत्व ये चार प्रकार के गुण स्वजाति की अपेक्षा सामान्य गुण हैं और विजातीय की अपेक्षा विशेष गुण हैं।

**जीवस्स चेयणत्तं, अमुत्तत्तं च सुद्ध-सहावादो।**
**पोग्गलस्स मुत्तत्तं, अचेयणत्तं विसेस-गुणा॥125॥**

**अर्थ**–शुद्ध स्वभाव से जीव का चेतनत्व और अमूर्तत्व विशेष गुण है। तथा पुद्गल का मूर्तत्व और अचेतनत्व विशेष गुण है।

### *शाश्वत शुद्ध द्रव्य*

**धम्माइ-दव्वण्णाण, अमुत्तत्तमचेयणत्तं गुणा य।**
**सस्सद-सुद्धदव्वं ण, परिणमंति विहावरूवेण॥126॥**

**अर्थ**–अन्य धर्मादि द्रव्यों के अमूर्तत्व व अचेतनत्व विशेष गुण हैं। ये चारों द्रव्य शाश्वत शुद्ध द्रव्य हैं ये कभी विभाव रूप परिणमित नहीं होते।

## III. पर्यायाधिकार

### पर्याय के एकार्थवाची व भेद

**वियारो विवत्तो तह, परिणाम-परिणमणभावेयट्ठो।**
**दव्व-गुणाण भेयादु, बेविहो पज्जाओ णेयो॥127॥**

**अर्थ**–विकार, विवर्त, परिणाम तथा परिणमन भाव सब एकार्थवाची हैं। द्रव्य और गुण के भेद से पर्याय दो प्रकार की जाननी चाहिए।

## द्रव्य-गुण पर्याय

**दव्वस्स परिणमणं च, मुणेदव्वो पज्जाओ दव्वस्स।**
**परिणमणं खलु गुणस्स, गुणपज्जाओ जिणसमयेण॥128॥**

**अर्थ**–जिनसमय (आगम) के द्वारा द्रव्य का परिणमन द्रव्य की पर्याय तथा गुण का परिणमन निश्चय से गुण की पर्याय जाननी चाहिए।

## द्रव्य पर्याय भेद

**दुविह-दव्वपज्जाओ, भेयादो सहाव-विहावाणं च।**
**धम्मादि-चउक्कस्स हु, सहावो य अण्णाण-मुहयो॥129॥**

**अर्थ**–स्वभाव और विभाव के भेद से द्रव्य पर्याय दो प्रकार की है। धर्मादि चतुष्क (अर्थात् धर्म, अधर्म, आकाश व काल) की स्वभाव पर्याय ही होती है और अन्य (जीव व पुद्गल) की स्वभाव व विभाव दोनों पर्यायें होती हैं।

## जीव-पुद्गल की स्वभाव-विभाव पर्याय

**सिद्धो य कम्मजुत्तो, सहावविहावपज्जाओ कमसो।**
**पोग्गलस्स परमाणू, देस-थूल-खंधाइ-रूवो॥130॥**

**अर्थ**–सिद्ध पर्याय व कर्म युक्त जीव क्रमशः जीव की स्वभाव-विभाव पर्याय हैं। परमाणु, देश, स्थूल, स्कंधादि रूप पर्याय पुद्गल की पर्याय हैं। परमाणु पुद्गल की स्वभाव व देशादि विभावपर्याय हैं।

## गुण पर्याय भेद

**गुणपज्जाओ दुविहो, भेयादु सुद्धासुद्धाण णेया।**
**सुद्धदव्वाण गुणाण, सुद्धा असुद्धाण असुद्धा॥131॥**

**अर्थ**–शुद्ध व अशुद्ध के भेद से गुण पर्याय दो प्रकार की जाननी चाहिए। शुद्ध द्रव्यों के शुद्ध गुणों की नियम से शुद्ध व अशुद्ध द्रव्यों के अशुद्ध गुणों की अशुद्ध पर्यायें होती हैं।

## जीव की विभाव गुण पर्याय

**मदिसुदादी णाणं च, चक्खु-पहुदि-दंसणं संसारीण।**
**कम्मक्खओवसमेण, चारित्तं वि विहावगुणा हु॥132॥**

**अर्थ**–संसारी जीवों के कर्मों के क्षयोपशम से होने वाला मति-श्रुतादि ज्ञान, चक्षु आदि दर्शन व चारित्र भी विभाव गुण पर्याय ही है।

## पुद्गल की विभाव गुण पर्याय

**पोग्गलखंधाणं खलु, रसाइ-विहावगुणा सव्वयाले।**
**विहाव-गुण-पज्जाया, होंति चिय असुद्धदव्वादो॥133॥**

**अर्थ**–निश्चय से पुद्गल स्कंधों के सर्वकाल में रस आदि विभाव गुण होते हैं। (स्कंध) अशुद्ध द्रव्य होने से उसकी विभाव गुण पर्याय ही होती है।

## जीव की स्वभाव गुण पर्याय

**गुणाण सुद्धजीवाण, पज्जाया हवंति सुद्धा णियमा।**
**केवलणाणं दंसण-सम्मत्तं वीरियमादी य॥134॥**

**अर्थ**–शुद्ध जीवों के गुणों की नियम से केवलज्ञान, केवलदर्शन, सम्यक्त्व और अनंतवीर्य आदि शुद्ध पर्याय ही होती हैं।

## पुद्गल की स्वभाव गुण पर्याय

**एयरसगंधवण्णं, दोण्णिफासं अणुस्स सुद्धगुणा दु।**
**ताणं पज्जाया अवि, सुद्धा पोग्गलाणं णेया॥135॥**

**अर्थ**–दो स्पर्श, एक रस, एक गंध व एक वर्ण अणु के शुद्धगुण हैं। उन शुद्ध पुद्गलों की पर्यायें भी शुद्ध जाननी चाहिए।

## व्यंजन-अर्थ पर्याय

**विंजणत्थाण समये, भेदादो पज्जाओ दोण्णिविहो।**
**पत्तेयं दुविहो ते, जहक्कमेणं मुणेदव्वो॥136॥**

**अर्थ**–आगम में व्यंजन और अर्थ के भेद से पर्याय दो प्रकार की कही हैं। वे प्रत्येक यथाक्रम से दो प्रकार की जाननी चाहिए।

## अर्थ-व्यंजन पर्याय लक्षण

**सुहुमो सद्दातीदो, खणखइणो तहा अत्थपज्जाओ।**
**धम्माइ-चउक्कस्स दु, होंति सया अत्थपज्जाया॥137॥**
**थूलो वयणगोयरो, चिरावत्थिदो विंजणपज्जाओ।**
**छउमत्थणाण-विसयो, उहयो जीवपोग्गलाणं च॥138॥**

**अर्थ**–सूक्ष्म, शब्दातीत, क्षण-क्षण में नष्ट होने वाली अर्थपर्याय है। धर्मादि चतुष्क की सदा अर्थ पर्यायें ही होती हैं। स्थूल, वचन के गोचर, चिरकाल तक अवस्थित, छद्मस्थों के ज्ञान का विषय व्यंजन पर्याय है। अर्थ व व्यंजन दोनों पर्याय जीव व पुद्गलों के होती हैं।

## अर्थपर्याय भेद

**सहावविहावाणं च, भेयादु दुविहो अत्थपज्जाओ।**
**धम्माइ-चउक्कस्स दु, सहावो सेसाणं उहयो॥139॥**

**अर्थ**–स्वभाव व विभाव के भेद से अर्थपर्याय दो प्रकार की कही है। धर्मादि चतुष्क के स्वभाव अर्थपर्याय होती है। शेष जीव व पुद्गल के स्वभाव-विभाव दोनों अर्थपर्यायें होती हैं।

## स्वभाव अर्थ पर्याय

**सहावत्थपज्जाया, उप्पज्जंते अगुरुलहुगुणेणं।**
**सडहाणिविद्धिरूवा, सव्वसुद्धदव्वेसु णियमा॥140॥**

**अर्थ**–अगुरुलघु गुण के कारण स्वभाव अर्थपर्याय उत्पन्न होती हैं। वें स्वभाव अर्थ पर्याय नियम से सभी शुद्ध द्रव्यों में षट्गुणहानि वृद्धि रूप होती हैं।

## षट्गुणहानिवृद्धि

**अणंतभागविद्धी य, असंखेज्ज-संखेज्ज-भागविद्धी।**
**संखेज्जासंखेज्जा, अणंतगुणविद्धि-सडविद्धी॥141॥**
**अणंतभागहाणी य, असंखेज्ज-संखेज्ज-भागहाणी।**
**संखेज्जासंखेज्जा, अणंतगुणहाणि-सडहाणी॥142॥**

**अर्थ**–वे षट्गुणवृद्धि इस प्रकार हैं–अनंतभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुण-वृद्धि व अनंतगुणवृद्धि। अनंतभागहानि, असंख्यातभागहानि, संख्यातभागहानि, संख्यातगुणहानि, असंख्यातगुणहानि व अनंतगुणहानि ये षट्गुणहानि हैं।

# VI. स्वभावाधिकार

## स्वभाव ही तत्त्व

**सहावो जो दव्वस्स, जस्स तस्स तच्चं तं णादव्वं।**
**दव्वं विणा ण तच्चं, णेव तच्चेण विणा दव्वो॥143॥**

**अर्थ**–जो जिस द्रव्य का स्वभाव है वह उसका तत्त्व जानना चाहिए। द्रव्य के बिना तत्त्व नहीं होता और तत्त्व के बिना द्रव्य नहीं होता।

## पृथक्-पृथक् स्वभाव

**पत्तेय-दव्वस्स पुध-पुध सहावो दु हवेदि णियमादो।**
**णो सुद्धदव्वो लहदि, सहावं चिय अण्णदव्वस्स॥144।**

**अर्थ**–प्रत्येक द्रव्य का नियम से पृथक्-पृथक् स्वभाव होता है। शुद्ध द्रव्य अन्य द्रव्य के स्वभाव को कभी ग्रहण नहीं करता।

## द्रव्य स्वभाव नहीं छोड़ते

**अण्णोणं पविसंता, लोयम्मि तहा विज्जमाण-दव्वा।**
**मेलंता वि य णिच्चं, सग-सभावं णेव विजहंति॥145॥**

**अर्थ**–विद्यमान सभी द्रव्य नित्य एक-दूसरे में प्रवेश करते हुए तथा परस्पर मिलते हुए भी अपने-अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते।

## सामान्य स्वभाव

**अत्थिणत्थिणिच्चमणिच्चमेगमणेगभेयमभेयं तह।**
**भव्वाभव्वा परमो, दव्वस्स सामण्णसहावा॥146॥**

**अर्थ**–अस्ति, नास्ति, नित्य, अनित्य, एक, अनेक, भेद, अभेद, भव्य, अभव्य तथा परम ये द्रव्य के सामान्य स्वभाव हैं।

## विशेष स्वभाव

**चेयणमचेयणं तह, मुत्तममुत्तमेगणेगपदेसो।**
**विहाव-सुद्धासुद्धा, उवचरिदो खलु दसविसेसा॥147॥**

**अर्थ**–चेतन, अचेतन, मूर्त, अमूर्त, एक प्रदेश, अनेक प्रदेश, विभाव, शुद्ध, अशुद्ध व उपचरित ये निश्चय से द्रव्य के दस विशेष स्वभाव हैं।

## अस्ति स्वभाव

**पत्तेयदव्वस्स खलु, अत्थिसहावो सो तिण्णियालम्मि।**
**सहावो गुणो कयाइ, सगसहावच्चुदो जेणं च॥148॥**

**अर्थ**–स्वभाव कदाचित् गुण भी है। जिसके द्वारा द्रव्य तीनों कालों में अपने स्वभाव से अच्युत रहता है अर्थात् कभी स्वभाव से च्युत नहीं होता वह निश्चय से प्रत्येक द्रव्य का अस्ति स्वभाव है।

**सदव्वखेत्तयालेहि, भाव-जुदो होदि पत्तेयदव्वो।**
**अत्थिसहावादो सो, सगचदुट्ठयं उज्झदि णेव॥149॥**

**अर्थ**–प्रत्येक द्रव्य स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से सहित होता है। वह अस्ति स्वभाव होने से स्वचतुष्टय को कभी नहीं छोड़ता।

## *नास्ति स्वभाव*

**जेण कारणेण को वि, दव्वो होदि ण परचदुट्ठरूवो।**
**णत्थिसहावो सो वा, परसरूवाभावादो खलु॥150॥**

**अर्थ**–जिस कारण से कोई भी द्रव्य परचतुष्टय रूप नहीं होता वह नास्ति स्वभाव है या परस्वरूप का अभाव होने से उसके नास्ति स्वभाव है।

## *नित्य स्वभाव*

**को वि जीवाइ-दव्वो, ण विणस्सदि कया वि कस्सिं याले।**
**णेव उप्पज्जदे तं, दव्व-णिच्चसहावो सिद्धं॥151॥**

**अर्थ**–कोई भी जीवादि द्रव्य कभी भी किसी भी काल में नष्ट नहीं होता और न ही उत्पन्न होता है। इसीलिए द्रव्य का नित्य स्वभाव सिद्ध है।

## अनित्य स्वभाव

**पज्जायं पडुच्च तं, अणिच्चसहावी पत्तेयदव्वो।**
**जं खणधंसी अणंत-पज्जाया हवंति दव्वस्स॥152॥**

**अर्थ**–क्योंकि द्रव्य के क्षणध्वंसी अनंत पर्याय होती हैं इसीलिए पर्यायों की अपेक्षा प्रत्येक द्रव्य अनित्य स्वभावी है।

## एक स्वभाव

**पत्तेयदव्वो सया, होदि एयसहावजुत्तो जम्हा।**
**गुणपज्जायणेगाण, सहावाणं एयाहारो॥153॥**

**अर्थ**–प्रत्येक द्रव्य सदा एक स्वभाव युक्त होता है क्योंकि अनेक गुण, पर्याय व स्वभाव का एकाधार होता है।

## अनेक स्वभाव

**पत्तेयदव्वो होदि, अणेगसहावसंजुदो णियमेण।**
**दव्वो अत्थ को वि चिय, णो मेत्तमेगसहावजुदो॥154॥**

**अर्थ**–प्रत्येक द्रव्य नियम से अनेक स्वभाव से युक्त होता है। यहाँ कोई भी द्रव्य मात्र एक स्वभाव से युक्त नहीं होता।

## भेद स्वभाव

**गुण-गुणि-आदीसुं लक्खण-सण्णा-संखा-पयोजणादो।**
**हवेदि भेयो तम्हा, भेयसहावो अवि दव्वस्स॥155॥**

**अर्थ**–लक्षण, संज्ञा, संख्या, प्रयोजन आदि की अपेक्षा गुण-गुणी आदि में भेद होता है इसीलिए द्रव्य का भेद स्वभाव भी है।

## अभेद स्वभाव

**गुणि-गुणादीसुं तहा, पदेसाभेदादो विआणेज्जा।**
**आगमाणुसारेणं, दव्वस्स अभेयसहावो वि॥156॥**

**अर्थ**–गुणी और गुण आदि में प्रदेश भेद नहीं होने से आगम के अनुसार द्रव्य का अभेद स्वभाव जानना चाहिए।

## भव्य स्वभाव

**उप्पज्जंति पत्तेय-दव्वे णाणा-णव-णव-पज्जाया।**
**सभव्वसहावदव्वो, भावि-पज्जाय-सरूवादो॥157॥**

**अर्थ**–प्रत्येक द्रव्य में नाना नवीन-नवीन पर्यायें उत्पन्न होती हैं। आगामी पर्याय स्वरूप होने से वह द्रव्य भव्य स्वभाव से युक्त है।

## अभव्य स्वभाव

**दव्व-अभव्वसहावो, अण्णदव्वरूवापरिणमिदादो।**
**णेयो अण्णदव्वस्स, अग्गहणादु गुणसहावाण॥158॥**

**अर्थ**–अन्य द्रव्य रूप परिणमित नहीं होने से अथवा अन्य द्रव्य के गुण और स्वभावों के ग्रहण नहीं करने से द्रव्य का अभव्य स्वभाव है।

## परम स्वभाव

**पत्तेयदव्वो होदि, संजुत्तो पारिणामियभावेण।**
**तम्हा परमसहावो, णेयो हु पत्तेयदव्वस्स॥159॥**

**अर्थ**–प्रत्येक द्रव्य पारिणामिक भाव से युक्त होता है इसीलिए प्रत्येक द्रव्य का परम स्वभाव जानना चाहिए।

## चेतन-अचेतन स्वभाव

**अणुभवेदुं समत्थो, जीवदव्वो चेयणसहावो तं।**
**सेसदव्वाण णेयो, अचेयणो हु तव्विवरीओ॥160॥**

**अर्थ**–जीव द्रव्य अनुभव करने में समर्थ है इसीलिए उसका चेतन स्वभाव है। शेष द्रव्यों का उससे विपरीत अचेतन स्वभाव है।

## मूर्त-अमूर्त स्वभाव

**फासगंधाइ-जुदादु, मुत्तसहावो पोग्गलस्स णेयो।**
**सेसाणं खलु अमुत्त-सहावो तव्विवरीयादो॥161॥**

**अर्थ**–स्पर्श और गंधादि से युक्त होने से पुद्गल का मूर्त स्वभाव है। शेष द्रव्यों का उससे विपरीत होने से अर्थात् स्पर्श व गंधादि नहीं होने से अमूर्त स्वभाव है।

**सगजादि-अवेक्खाए, चत्तारि-चेयणादी सामण्णा।**
**परदव्वं च पडुच्चा, विजादीदु विसेससहावा॥162।**

**अर्थ**–स्वजाति की अपेक्षा चेतन आदि चार गुण सामान्य हैं और परद्रव्य का आश्रय करके विजाति की अपेक्षा विशेष स्वभाव हैं।

## काल एकप्रदेश स्वभावी

**जीवाइ-पणदव्वाण, हवेदि अणेग-पदेससहावो वि।**
**किण्णु ण कालदव्वस्स, जम्हा हु एयपदेसी सो॥163॥**

**अर्थ**–जीवादि पाँच द्रव्यों के अनेक प्रदेश स्वभाव भी होता है। किन्तु कालद्रव्य के नहीं होता क्योंकि वह एकप्रदेशी ही है।

## एकप्रदेश स्वभाव

**एयपदेसत्तं खलु, संभवो जीवाइ-सव्वदव्वेसु।**
**तत्तो वि एयपदेस-सहावो णादव्वो ताणं॥164॥**

**अर्थ**–निश्चय से जीवादि सभी द्रव्यों में एक प्रदेशत्व संभव है इसीलिए उनका एक प्रदेश स्वभाव भी जानना चाहिए।

## अणु बहुप्रदेशी भी

**एयपदेसी वि अणू, किण्णु उवयारेण बहुपदेसी वि।**
**तम्हा दोण्णि-सहावो, परमाणुस्स हि मुणेदव्वो॥165॥**

**अर्थ**–अणु एकप्रदेशी है किन्तु उपचार से बहुप्रदेशी भी है। इसीलिए परमाणु के दोनों ही स्वभाव जानने चाहिए।

## अन्य द्रव्य बहुप्रदेशी भी

**णेव कालदव्वो बहुपदेसी कया वि कस्सिं वि खेत्ते।**
**अण्णदव्वाण तम्हा, बहुपदेस-सहाव-विसेसो॥166॥**

**अर्थ**–कभी भी किसी भी क्षेत्र में कालद्रव्य बहुप्रदेशी नहीं होता। इसीलिए अन्य द्रव्यों का बहुप्रदेश स्वभाव विशेष है।

## जीव व पुद्गल का विभाव स्वभाव भी

**जीवपोग्गला विहाव-सहावरूवेण परिणमंति सया।**
**सहावे लहणे एग-वारं णेव उज्झदे जीवो तं।।167।।**
**सहावादो विहावे, परिणमंति सहावे विहावादो।**
**पोग्गलदव्वो णियमा, विहावसहावो तमुहयाण।।168।।**

**अर्थ**–जीव व पुद्गल सदा विभाव-स्वभाव रूप से परिणमन करते हैं। जीव एक बार स्वभाव प्राप्त करने पर उसे नहीं छोड़ता। तथा पुद्गल द्रव्य नियम से स्वभाव से विभाव में और विभाव से स्वभाव में परिणमन करता है। इसीलिए दोनों का विभाव स्वभाव भी है।

## पुद्गल शुद्धाशुद्ध

**हवंति पोग्गलखंधा, णियमेणं असुद्धरूवा हि सया।**
**परमाणू चिय सुद्धो, णवरि असुद्धो होदि पुण-पुण।।169।।**

**अर्थ**–पुद्गल स्कंध नियम से सदा अशुद्ध रूप ही होते हैं। परमाणु शुद्ध होता है किन्तु विशेषता यह है कि वह पुनः पुनः अशुद्ध भी होता है।

## धर्मादि द्रव्यों का विभाव स्वभाव नहीं

**ससहावजुद-धम्माइ-चउक्कदव्वा अणाइयालादो।**
**तं ण विहावसहावो, परिणमंति ण विहावरूवं॥170॥**

**अर्थ**–अनादिकाल से धर्मादि चतुष्क अर्थात् धर्म, अधर्म, आकाश व काल द्रव्य स्व स्वभाव से युक्त हैं। वे विभाव रूप परिणमन नहीं करते इसीलिए उनका विभाव स्वभाव नहीं है।

## द्रव्यों का शुद्धाशुद्ध स्वभाव

**सेसाण सुद्धासुद्ध-सहावा उहयरूवपरिणमिदादु।**
**धम्माइ-चउक्कस्स य, णियमा सुद्धसहावो हि सय॥171॥**

**अर्थ**–शेष जीव व पुद्गल के उभय (स्वभाव-विभाव) रूप परिणमन करने से शुद्ध व अशुद्ध स्वभाव है। धर्मादि चतुष्क के नियम से सदा शुद्ध स्वभाव ही है।

## उपचरित स्वभाव

**अण्णदव्वस्स कयाइ, सहावगहणादु सहावुवयारो।**
**जीव-पोग्गलाणं अवि, ण अण्ण-धम्माइ-चउक्कस्स॥172॥**

**अर्थ**–कदाचित् अन्य द्रव्य का स्वभाव ग्रहण करने से जीव व पुद्गल के उपचार स्वभाव भी है। किन्तु अन्य धर्मादि चतुष्क (धर्म, अधर्म, आकाश, काल द्रव्य) के उपचार स्वभाव नहीं है।

## उपचरित स्वभाव व भेद

**सहावस्स अण्णत्तं, उवयार-कुव्वणं चिअ उवचरिदो।**
**दुविह-सहावो णेयो, कम्मजो सहाविगो णियमा॥173॥**

**अर्थ**–स्वभाव का अन्यत्र उपचार करना उपचरित स्वभाव जानना चाहिए वह नियम से दो प्रकार का है–कर्मज व स्वाभाविक।

## कर्मज-स्वाभाविक उपचरित स्वभाव

**जीवस्स मुत्तत्तं च, अचेयणत्तं कम्मजो सहावो।**
**सिद्धाण परण्णत्तं, सहाविगो परदंसगत्तं॥174॥**

**अर्थ**–जीव का मूर्तत्व और अचेतनत्व कर्मज उपचार स्वभाव है। सिद्धों का परज्ञता और परदर्शकत्व स्वाभाविक उपचार स्वभाव है।

## द्रव्यों की स्वभाव संख्या

**जीवपोग्गलाणं तह, एगवीसं यालस्स पणरसा दु।**
**धम्माइ-चउक्कस्स य, सोडस-सहावा णादव्वा॥175॥**

**अर्थ**–जीव तथा पुद्गल के इक्कीस, काल के पंद्रह और धर्मादि चतुष्क के निश्चय से सोलह स्वभाव जानने चाहिए।

### स्वभाव लक्षण

**णस्सदि कया वि केण वि, कारणेण ण दव्वस्स जा सत्ती।**
**सा जाणेज्ज सहावो, दव्वस्स हु मूलभावो वा॥176॥**

**अर्थ**–द्रव्य की जो शक्ति कभी भी किसी भी कारण से नष्ट नहीं होती वह स्वभाव जानना चाहिए। अथवा निश्चय से द्रव्य का मूलभाव स्वभाव है।

### सभी स्वभाव गुण नहीं

**णेव सव्वा सहावा, गुणरूवा भणिज्जंति दव्वाणं।**
**किण्णु सहावरूवा दु, सव्वगुणा सया णादव्वा॥177।**

**अर्थ**–द्रव्यों के सभी स्वभाव गुणरूप नहीं कहे जाते किन्तु सभी गुण सदा स्वभाव रूप जानना चाहिए।

## V. स्याद्वाधिकार

### स्याद्वाद

**एगवत्थुम्मि अणेग-धम्मा विज्जंति पत्तेयसमये।**
**सावेक्खेणं ताणं, कहण-विही दु सिआवाओत्ति॥178॥**

**अर्थ**–प्रत्येक समय एक वस्तु में अनेक धर्म विद्यमान होते हैं। उनको सापेक्ष रूप से कथन करने की विधि स्याद्वाद है।

## स्याद्वाद से सिद्धि

**सिद्धी सव्वगुणधम्म-पज्जायाण सिआवाय-विहीए।।**
**विणा सिआवायेणं, जीवो णो होदि सद्दिट्ठी।।179।।**

**अर्थ**–स्याद्वाद विधि से सर्व गुण, धर्म और पर्यायों की सिद्धि होती है। स्याद्वाद के बिना जीव सम्यग्दृष्टि नहीं होता।

## स्याद्वाद की महत्ता

**सरीरम्मि जह पाणो, गंधो पुप्फम्मि मोत्तिअं सिप्पे।**
**तह सिआवाओ धम्म-सुत्त-मप्पहिदत्थं कहिदुं।।180।।**

**अर्थ**–जैसे शरीर में प्राण, पुष्प में गंध, सीप में मोती है उसी प्रकार आत्म हितार्थ धर्म सूत्र को कहने के लिए स्याद्वाद है।

## सप्तभंगी

**सिअ-अत्थि-णत्थि-उहयं, सिअ-अवत्तव्व-मत्थि अवत्तव्वं।**
**णत्थि अवत्तव्वं सिअ-उहय-अवत्तव्वं च भंगा।।181।।**

**अर्थ**–स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् उभय (अस्ति नास्ति), स्यात् अवक्तव्य, स्यात् अस्ति अवक्तव्य, स्यात् नास्ति अवक्तव्य और स्यात् उभय (अस्ति-नास्ति) अवक्तव्य ये सात भंग हैं।

## स्यात् अस्ति

**जो को वि पदत्थो इह, लोए विज्जदि अणाइयालादो।**
**सगचदुट्ठयं पडुच्चा, मुणेदव्वो हु सिअ-अत्थि सो॥182॥**

**अर्थ**–अनादिकाल से इस लोक में जो कोई भी पदार्थ विद्यमान है वह स्वचतुष्टय की अपेक्षा स्यात् अस्ति जानना चाहिए।

## स्यात् नास्ति

**परदव्वाइ-चउक्कं, पडुच्चा हवेदि वत्थु-पत्तेयं।**
**णो किण्णु णत्थिरूवं, सव्वदा सिअ-णत्थि जाणेज्ज॥183॥**

**अर्थ**–परद्रव्यादि चतुष्क की अपेक्षा प्रत्येक वस्तु नास्ति रूप होती है किन्तु सदा नास्ति रूप नहीं होती यह स्यात् नास्ति जानना चाहिए।

## स्यात् अस्ति-नास्ति

**सिअ-अत्थि-णत्थि-रूवं, पत्तेयं वत्थुं सय णादव्वं।**
**अत्थि-णत्थि-रूव-वत्थु-मत्थि-णत्थि अवेक्खाइ होज्ज॥184॥**

**अर्थ**–अस्ति-नास्ति अपेक्षा से वस्तु अस्ति-नास्ति रूप होती है। प्रत्येक वस्तु सदा स्यात् अस्ति नास्ति रूप जानना चाहिए।

## स्यात् अवक्तव्य

**जं पत्तेय-वत्थुम्मि, वट्टंते बहु-गुण-धम्म-सहावा।**
**इगसमये कहिदुं तं, ण समत्थो सिअ-अवत्तव्वं॥185॥**

**अर्थ**–प्रत्येक वस्तु में बहुत गुण, धर्म, स्वभाव वर्तन करते हैं; क्योंकि उन्हें एक समय में कहने में समर्थ नहीं हैं इसीलिए स्यात् अवक्तव्य है।

## स्यात् अस्ति अवक्तव्य

**वत्थुं अत्थि-आइ-बहु-धम्म-जुदं कहिदुं एगसमयम्मि।**
**तं संपुण्ण-धम्मं ण, समत्थो अत्थि-अवत्तव्वं॥186॥**

**अर्थ**–वस्तु अस्ति आदि बहुत धर्मों से युक्त है। उस संपूर्ण धर्म को कोई भी एक समय में कहने में समर्थ नहीं है इसीलिए स्यात् अस्ति अवक्तव्य है।

## स्यात् नास्ति अवक्तव्य

**णत्थि रूवणंतधम्म-जुदवत्थुस्स धम्मं एगसमये।**
**णेव कहिदुं समत्थो, सिअ-णत्थि-अवत्तव्वं तं हु॥187॥**

**अर्थ**–नास्ति रूप अनंत धर्म युक्त वस्तु के धर्म को कोई भी एक समय में कहने में समर्थ नहीं है इसीलिए स्यात् नास्ति अवक्तव्य है।

## स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य

**पत्तेयवत्थुम्मि अवि, होंति अत्थिरूवाणंतसहावा।**
**णत्थिरूवा अणंता, सगवरचदुट्ठयं पडुच्चा॥188॥**
**णवरि एगसमयम्मि हु, को वि समत्थो उप्पालिदुं णेव।**
**तम्हा अंतिमभंगो, सिअ-अत्थि-णत्थि-अवत्तव्वं॥189॥**

**अर्थ**–प्रत्येक वस्तु में स्वचतुष्टय की अपेक्षा अस्ति रूप अनंत स्वभाव होते हैं और परचतुष्टय की अपेक्षा नास्ति रूप अनंत स्वभाव होते हैं किंतु उन्हें एक समय में कहने में कोई भी समर्थ नहीं है इसीलिए अंतिम भंग स्यात्–अस्ति नास्ति अवक्तव्य है।

## सात का माहात्म्य

**भासिदुं कं वि वत्थुं, णो कया वि होज्ज अट्ठमो भंगो।**
**सत्तभंगा हि णियमा, सव्वखेत्ते सव्वयालम्मि॥190॥**

**अर्थ**–किसी भी वस्तु को कहने के लिए कभी भी आठवाँ भंग नहीं होता। सर्व क्षेत्र व सर्व काल में नियम से भंग सात ही हैं।

**सत्तभंगी सत्तणय-भय-दिवस-सर-वयण-तच्चाइं तह।**
**जंबूदीवस्स सत्त-भरदाइखेत्ताणि णिरयाणि॥191॥**
**सत्तवसणं च सीलो, सक्कधणुस्स सत्तवण्णो रिसी य।**
**दायगस्स सत्तगुणो, हरिस्स महारयणं णेयं॥192॥**

**अर्थ**–सप्तभंगी, सात नय, सात भय, सात दिन, सात स्वर, सात वचन, सात तत्त्व, जंबूद्वीप के भरतादि सात क्षेत्र, सात नरक, सात व्यसन, सात शील, इन्द्रधनुष के सात रंग, सप्तऋषि, दाता के सात गुण और नारायण के सात महारत्न जानने चाहिए।

## ज्ञानी व ज्ञानाभासी

**सिआवाय-वयणविहिं, णंति जहत्थेणं णरा जे के वि।**
**ते मण्णे सण्णाणी, णाणाभासी खलु इयरा य॥193॥**

**अर्थ**–जो कोई भी नर यथार्थ रूप से स्याद्वाद वचन विधि को जानते हैं वे सम्यग्ज्ञानी माने जाते हैं। इनसे इतर निश्चय से ज्ञानाभासी हैं।

## तत्त्वबोधार्थ स्याद्वाद

**सत्तभंगी हु हेदू, पत्तेय-वत्थुं जाणिदुं सम्मं।**
**इमाए विणा ण को वि, सक्को सच्च-तच्चं णादुं॥194॥**

**अर्थ**–प्रत्येक वस्तु को जानने के लिए स्याद्वाद-सप्तभंगी सम्यक् हेतु है। इसके बिना कोई भी सत्य तत्त्व को जानने में शक्य नहीं है।

## स्याद्वाद से यथार्थ ज्ञान

**सिआवायो समत्थो, भासिदुमणेगंतमहाधम्मं हि।**
**तेणं विणा णहि को वि, वत्थूण जहवट्टियरूवं॥195॥**

**अर्थ**–अनेकांत रूप महाधर्म को कहने में स्याद्वाद ही समर्थ है। उसके बिना वस्तुओं के यथार्थ रूप को कहने में कोई भी समर्थ नहीं है।

## स्याद्वाद बिना जिनशासन नहीं

**मूलं विणा य रुक्खो, आइच्चेणं विणा जह गहत्थी।**
**सिआवायं विणा तह, जिणसासण-ठिदी संभवो ण॥196॥**

**अर्थ**–जैसे मूल के बिना वृक्ष और सूर्य के बिना उसकी किरण संभव नहीं है उसी प्रकार स्याद्वाद के बिना जिनशासन की स्थिति संभव नहीं है।

## स्याद्वाद बिना सम्यग्ज्ञानी नहीं

**सिआवाय-विहीणं दु, सण्णाणं विआणेज्ज तहेव जह।**
**ससग-विसाणं अहवा, उण्हत्तं विणा चिअ अग्गी॥197॥**

**अर्थ**–निश्चय से स्याद्वाद से विहीन सम्यग्ज्ञानी उसी प्रकार जानना चाहिए जैसे–खरगोश के सींग अथवा ऊष्णता के बिना अग्नि।

## स्याद्वाद से वस्तु स्वरूप ज्ञान

**जह जोदिहीण-पुरिसो, णेव समत्थो अवक्खिदुं वत्थुं।**
**तह सिआवाय-हीणो, उप्पालिदुं वत्थुसरूवं॥198॥**

**अर्थ**–जैसे ज्योति से हीन पुरुष वस्तु को देखने में समर्थ नहीं है उसी प्रकार स्याद्वाद से हीन वस्तु स्वरूप को कहने में समर्थ नहीं है।

## स्याद्वाद युक्त सम्यक् नय

**णय-वावार-विहीणा, कहं तच्चदेसणा य सण्णाणं।**
**सामण्ण-विसेस-जुदा, स-सिआवायंक-सम्मणया॥199॥**

**अर्थ**–नय व्यापार से हीन तत्त्वदेशना व सम्यग्ज्ञान किस प्रकार हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता। सामान्य व विशेष से युक्त सम्यक् नय स्याद्वाद चिह्न से युक्त होते हैं।

## एकांत पक्ष हेय

**खज्जोदोव्व लोयम्मि, एयंतपक्खो खलु मुणेदव्वो।**
**बहुत्ता खज्जोदा वि, असमत्था णस्सिदुं तिमिरं॥200॥**

**अर्थ**–एकांत पक्ष लोक में जुगनू के समान जानना चाहिए। बहुत से जुगनू भी अंधकार को नष्ट करने में असमर्थ होते हैं।

## स्याद्वाद रीति

**दव्वस्स गुणसहावा, सुद्धासुद्धा पज्जाया णेया।**
**सिआवाय-रीदीए, जहत्थेण णो एगंतेण॥201॥**

**अर्थ**–द्रव्य के गुण, स्वभाव, शुद्ध व अशुद्ध पर्यायें यथार्थ रूप से स्याद्वाद रीति से जानना चाहिए, एकांत से नहीं।

**सिआवाय-जुद-वयणं, दिणयर-किरणोव्व सया जाणेज्जा।**
**दिणयर-किरणेहि विणा, णो णस्सेदि तमो लोयस्स॥202॥**

**अर्थ**–स्याद्वाद से युक्त वचन सदा सूर्य की किरण के समान जानना चाहिए। सूर्य की किरणों के बिना लोक का अंधकार नष्ट नहीं होता।

## स्याद्वाद वचनोपादेय

**अप्पकल्लाणकंखी, सण्णाणी जो सो हवेदि णियमा।**
**सद्दिट्ठी मण्णदे हु, सिआवाय-संजुत्त-वयणं।।203।।**

**अर्थ**–जो आत्मकल्याण का आकांक्षी, सम्यग्दृष्टि, सम्यग्ज्ञानी होता है वह नियम से स्याद्वाद युक्त वचन को मानता है।

**अक्कोदयेणं विणा, अक्कपयासो ण संभवो कया वि।**
**जह तह अण्णाणतमो, ण णस्सदि विणा सिआवायं।।204।।**

**अर्थ**–जैसे सूर्योदय के बिना सूर्य का प्रकाश कदापि संभव नहीं है वैसे स्याद्वाद के बिना अज्ञान का अंधकार कभी नष्ट नहीं होता।

## स्याद्वाद से सम्यक्त्वादि

**सिआवायो हु हेदू, सम्मत्त-सण्णाण-चरिय-तवाणं।**
**धम्मसुक्कझाणाणं, तहा संवर-णिज्जर-सिवाण।।205।।**

**अर्थ**–स्याद्वाद-सम्यक्त्व, सम्यग्ज्ञान, चारित्र, तप, धर्मध्यान, शुक्लध्यान, संवर, निर्जरा तथा मोक्ष का हेतु है।

### मोक्ष हेतु

**भव्वाणं सम्मत्तं, णाणं चरियमादी मोक्खहेदू।**
**सण्णाणचरित्तादी, असंभवा विणा सम्मत्तं।।206।।**

**अर्थ**–भव्यों का सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र आदि मोक्ष का हेतु है। सम्यक्त्व के बिना सम्यग्ज्ञान व चारित्र आदि असंभव हैं।

### तत्त्व श्रद्धान

**सम्मत्तं हु पओजण-भूद-तच्च-सद्धाइ मुक्खहेदू।**
**तच्चसद्दहणं विणा, सम्मत्ताइ-गुणा ण फुडंति।।207।।**

**अर्थ**–सम्यक्त्व प्रयोजन भूत तत्त्वों की श्रद्धा का मुख्य हेतु है। तत्त्वों के श्रद्धान के बिना सम्यक्त्वादि गुण प्रकट नहीं होते।

## VI. तत्त्वाधिकार

### सप्त तत्त्व

**जीवादि-सत्ततच्चं, भाव-सम्मत्त-कारणं जाणेज्ज।**
**जीवाजीवा आसव-बंध-संवर-णिज्जरा सिवो।।208।।**

**अर्थ**–जीवादि सात तत्त्व भाव-सम्यक्त्व का कारण जानना चाहिए। जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा व मोक्ष ये सात तत्त्व हैं।

## जीव-अजीव तत्त्व

**जीवलक्खणो णेयो, चेयणा तस्स तच्चं जीवत्तं।**
**साजीवत्त-मजीवो, जीवासुद्धो अजीवजुदो॥209॥**

**अर्थ**–चेतना जीव का लक्षण व उसका तत्त्व जीवत्व जानना चाहिए। अजीवत्व से युक्त अजीव है। अशुद्ध जीव, अजीव से युक्त होता है।

## आस्रव तत्त्व

**पोग्गलसंजोगेणं, आसवदे कम्मवग्गणा जीवो।**
**आसवो मुणेदव्वो, असुद्धजीवस्स तच्चं तं॥210॥**

**अर्थ**–जीव पुद्गल के संयोग से कर्म वर्गणाओं का आस्रव करता है। वह आस्रव जानना चाहिए। वह अशुद्ध जीव का तत्त्व है।

## आस्रव प्रत्यय

**मिच्छत्तविरदि-पमाद-कसायजोगा चिय आसव-हेदू य।**
**कारणं विणा ण होदि, कं वि कज्जं दु इह लोयम्मि॥211॥**

**अर्थ**–मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय व योग निश्चय से आस्रव के हेतु हैं। इस लोक में कोई भी कार्य कारण के बिना नहीं होता।

## बंध तत्त्व

**असुद्धप्पपदेसेसु, एगत्त-हवणं कम्मवग्गणाण।**
**बंधतच्चं दु णेयं, चदुविहं सया जिणसमयम्मि॥212॥**

**अर्थ**–अशुद्ध आत्म प्रदेशों में कर्म वर्गणाओं का एकत्व होना बंधतत्त्व जानना चाहिए वह जिनागम में सदा चार प्रकार का है।

## बंध भेद

**पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेस-भेया दु चदुविहो बंधो।**
**जोगा पयडि-पदेसा, ठिदि-अणुभागा य मोहादो॥213॥**

**अर्थ**–प्रकृति, स्थिति, अनुभाग व प्रदेश ये चार प्रकार बंध के भेद हैं। योग से प्रकृति, प्रदेश और मोह से स्थिति व अनुभाग बंध होते हैं।

## संवर तत्त्व

**णिरोहणं संवरो दु, आगच्छमाण-कम्म-वग्गणाणं।**
**मोक्खमग्गीण विफला, संवरेण विणा णिज्जरा य॥214॥**

**अर्थ**–आती हुई कर्म वर्गणाओं का निरोध करना संवर है। संवर के बिना निर्जरा मोक्षमार्गियों के लिए विफल है।

## संवर के कारण

**सम्मत्तं वदसमिदी, गुत्ती-धम्मणुवेक्खा संवरस्स।**
**परिसहिंदिय-विजओ य, तवो झाणं हेदू णेया॥215॥**

**अर्थ**–सम्यक्त्व, व्रत, समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय, इंद्रियविजय, तप और ध्यान भी संवर के कारण जानने चाहिए।

## सविपाकी निर्जरा

**वदाइं विणा हवेदि, जा णिज्जरा दु पत्तेय-जीवस्स।**
**पडिसमयम्मि लोयम्मि, सा सविवागि-णिज्जरा जाण॥216॥**

**अर्थ**–लोक में प्रत्येक जीव के प्रतिसमय व्रतादि के बिना जो निर्जरा होती है वह निश्चय से सविपाकी निर्जरा जाननी चाहिए।

## अविपाकी निर्जरा

**सम्मद्दंसण-संजुद-जीवस्स जा णिज्जरा अविवागी।**
**हवेदि सा सुव्वदाइ-पहावेण वड्ढदे कमसो॥217॥**

**अर्थ**–सम्यक्त्व से युक्त जीव के सुव्रतादि के प्रभाव से जो निर्जरा होती है वह अविपाकी निर्जरा है। सुव्रतादि के प्रभाव से वह क्रमशः वृद्धिंगत होती है।

## अकाम निर्जरा

**अकाम-णिज्जरा कुणदि, जो को वि मिच्छाइट्ठी कुतवेहि।**
**सो णेव मोक्खमग्गं, पप्पोदि चिय मिच्छत्तादो॥218॥**

**अर्थ**–जो कोई भी मिथ्यादृष्टि कुतपों से कदाचित् अकाम निर्जरा करता है वह मिथ्यात्व के कारण मोक्षमार्ग को प्राप्त नहीं करता।

## जीव के तत्त्व

**संवर-णिज्जर-सिवा वि, जाणह तच्चाणि असुद्धजीवस्स।**
**सुद्धो जीवो होज्जा, अजीवाइ-तच्चविहीणो दु॥219॥**

**अर्थ**–संवर, निर्जरा व मोक्ष भी अशुद्ध जीव के तत्त्व जानने चाहिए। शुद्ध जीव निश्चय से अजीव आदि तत्त्व से विहीन होता है।

## मोक्ष

**सव्वकम्महीणत्तं, जीवस्स मोक्ख-परमतच्चं तस्स।**
**अंतिम-तच्चं णेयं, आसण्णभव्वजीवाणं दु॥220॥**

**अर्थ**–जीव का सर्व कर्मों से रहितपना जीव का मोक्ष नामक परम तत्त्व है। आसन्न भव्यजीवों का निश्चय से अंतिम तत्त्व जानना चाहिए।

## सम्यक्त्व आवश्यक

**सुद्धि-कारणं मुक्खं, जीवाण तच्च-जहत्थ-सद्दहणं।**
**चेयणहीण-जीवोव्व, सद्दहणं विणा सम्मत्तं॥221॥**

**अर्थ**–तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान जीवों की शुद्धि का मुख्य कारण है। श्रद्धान के बिना सम्यक्त्व, चेतना से हीन जीव के समान है।

## नव पदार्थ

**इमेसु सत्ततच्चेसु, जुंजंते जदि पुण्णपावाइं वि।**
**तो होंति णवपदत्था, णिद्दिट्ठा गणहरदेवेहि॥222॥**

**अर्थ**–इन सात तत्त्वों में यदि पुण्य-पाप भी जोड़ते हैं तो नव पदार्थ होते हैं, यह गणधर देवों के द्वारा निर्दिष्ट किया गया है।

**दव्वगुणपज्जायमय-णेयरूवं पत्तेयं वायगवत्थुं।**
**मुणेदव्वो पदत्थो, जिणसमयेण सण्णाणीहिं॥223॥**

**अर्थ**–प्रत्येक वाचक वस्तु जो द्रव्यमय, गुणमय व पर्यायमय है एवं ज्ञेयरूप है वह जिनागम में सम्यग्ज्ञानियों के द्वारा पदार्थ जानना चाहिए।

## पाप कर्म

**कज्जलावावदे जं, भवसायरम्मि देदि अणिट्ठफलं।**
**जाण तं पावकम्मं, इयरसहावजुत्तं पुण्णं॥224॥**

**अर्थ**–जो भव सागर में डुबाता है, अनिष्टफल देता है वह पाप कर्म है। इतर स्वभाव से युक्त पुण्य जानना चाहिए।

## पुण्य कर्म

**भव-सोक्खकारगं जं, इट्ठफल-पदायगं मोक्ख-हेदू।**
**णिक्कंखिद-करिदं तं, कम्मं पुण्णं मुणेदव्वं॥225॥**

**अर्थ**–जो भव सुख का कारक है, इष्ट फल प्रदायक व निःकांक्षित किया गया शिव का हेतु है, वह कर्म पुण्य जानना चाहिए।

## पुण्य मोक्ष कारण भी

**कंखा-णिदाण-विहीण-पुण्णकज्जाणि कुव्वंति जे के वि।**
**ताणं तं पुण्णं सय, णिव्वाण-पय-कारणं जाण॥226॥**

**अर्थ**–जो कोई भी कांक्षा और निदान से रहित पुण्य कार्य करते हैं उनका वह पुण्य सदा निर्वाण पद का कारण जानना चाहिए।

# VII. उपायाधिकार

## पदार्थों को जानने का उपाय

**लक्खणं तह पमाणं, णिक्खेव-णयाणुजोगदाराइं।**
**पदत्था विआणेदुं, लोयम्मि पंच-हेदू जाण।।227।।**

**अर्थ**–पदार्थों को जानने के लिए लोक में पाँच हेतु जानने चाहिए– लक्षण, प्रमाण, निक्षेप, नय तथा अनुयोग द्वार।

## परीक्षा कर तत्त्व ग्रहण

**लक्खण-पमाणेहिं च, णिक्खेव-णयाणुजोगदारेहिं।**
**परिक्खणं कट्टु गहदु, तच्चं खलु सुवण्णयारोव्व।।228।।**

**अर्थ**–स्वर्णकार के समान (जैसे स्वर्णकार स्वर्ण की परीक्षा कर ही उसे ग्रहण करता है वैसे ही) लक्षण, प्रमाण, निक्षेप, नय और अनुयोग द्वार से परीक्षा कर तत्त्व को ग्रहण करें।

**जहवि केसर-हलिद्दा, होंति संजुत्ता पीदवण्णेणं।**
**तहवि दोण्णि-लक्खणेसु, महाणंतरो खलु जाणेज्ज।।229।।**
**थाणु-पुरिसेसुं कच्च-वज्ज-सिप्पि-रजद-लवण-सक्करासु।**
**लक्खणं विणा भेयो, णो संभवो काग-पिगेसु दु।।230।। (जुग्मं)**

**अर्थ**–यद्यपि केसर व हल्दी दोनों पीतवर्ण से युक्त होती हैं तथापि दोनों के लक्षणों में महान् अंतर जानना चाहिए। स्थाणु–पुरुष, काँच-हीरा, सीप-चाँदी, नमक-शक्कर, कोयल-काक में लक्षण के बिना भेद संभव नहीं है।

## परीक्षण आवश्यक

**तेहिं विणा दु मिच्छो, सम्मं व णिच्चं सम्मं मिच्छोव्व।**
**पडिभासदि तं ताणं, णाणं आवसियं बुहाणं॥231॥**

**अर्थ**–उन (लक्षण, प्रमाण, अनुयोग द्वार, नय, निक्षेप) के बिना नित्य मिथ्या सम्यक् के समान और सम्यक् मिथ्या के समान प्रतिभासित होता है इसीलिए बुधजनों के लिए उनका ज्ञान आवश्यक है।

**लक्खणेहि परिक्खणं, कडुअ उवयरदि वेज्जो रोगीणं।**
**बुहा गहेज्ज तच्चाणि, जह तहेव सण्णाणस्स सय॥232॥**

**अर्थ**–जैसे लक्षणों के द्वारा परीक्षण करके वैद्य रोगियों का उपचार करता है वैसे ही सम्यग्ज्ञान के लिए बुधजनों को सदा परीक्षण करके तत्त्वों को ग्रहण करना चाहिए।

## नयादि द्वारा ही यथार्थ ज्ञान

**णयादीहि परिक्खणं, कट्टु जुत्ताजुत्तसच्चमोसाण।**
**णाणं संभवो ताण, णाणं आवसियं णाणीण॥233॥**

**अर्थ**–नयादि के द्वारा परीक्षा करके ही युक्त-अयुक्त, सत्य-असत्य का ज्ञान संभव है। इसीलिए ज्ञानियों के लिए उनका ज्ञान होना आवश्यक है।

# VIII. लक्षणाधिकार

## लक्षण स्वरूप

**पुधकरण-कारण-मेग-वत्थुस्स हु अणेगवत्थूदो जं।**
**तं लक्खणमप्पणप्पभूदाण भेयादो दुविहं।।234।।**

**अर्थ**–अनेक वस्तुओं से एक वस्तु के अलग करने का जो कारण है वह लक्षण है। वह आत्मभूत व अनात्मभूत के भेद से दो प्रकार का है।

## आत्मभूत व अनात्मभूत लक्षण

**वत्थुम्मि लक्खणं जं, विज्जदि तं अणण्णरूवेण सया।**
**अप्पभूदलक्खणं च, अणप्पभूदलक्खणमियरं।।235।।**

**अर्थ**–जो लक्षण वस्तु में अनन्य रूप से विद्यमान है वह आत्मभूत लक्षण है और अनात्मभूत लक्षण इससे इतर है।

## लक्षण उदाहरण

**पोग्गलस्स वण्णादी, जीवस्स णाणादी अप्पभूदो।**
**दंडछत्तजुदस्स वा, दंडो छत्तमणप्पभूदो।।236।।**

**अर्थ**–जैसे–पुद्गल के वर्ण आदि या जीव का ज्ञानादि आत्मभूत लक्षण है एवं दंड या छत्र से युक्त पुरुष के दंड व छत्र अनात्मभूत लक्षण हैं।

## लक्षणाभास

**सदोसलक्खणं सया, लक्खणाभासं जिणवरुद्दिट्ठं।**
**अइवत्ती य अवत्ती, असंभवो तिविहं जाणेज्ज॥237॥**

**अर्थ**–जिनेंद्र भगवान् के द्वारा सदोष लक्षण को लक्षणाभास कहा गया है। वह अतिव्याप्ति, अव्याप्ति और असंभव के भेद से तीन प्रकार का जानना चाहिए।

## अतिव्याप्ति दोष

**जत्थ लक्खणं लक्खा-लक्खुहयेसु विज्जदि तत्थ दोसो।**
**णेयो अइवत्ती जह, तित्थयराण सव्वण्हुत्तं॥238॥**

**अर्थ**–जहाँ लक्षण लक्ष्य व अलक्ष्य दोनों में विद्यमान होता है वहाँ अतिव्याप्ति दोष जानना चाहिए जैसे तीर्थंकरों का लक्षण सर्वज्ञता।

## अव्याप्ति दोष

**पुण्णंसे लक्खणस्स, णेव विज्जदि लक्खणं जत्थ तत्थ।**
**तित्थयरकम्मुदयो हु, केवलीणं जहा अवत्ती॥239॥**

**अर्थ**–जहाँ लक्षण लक्ष्य के पूर्ण अंश में विद्यमान नहीं होता वह अव्याप्ति दोष है। जैसे केवलियों का लक्षण तीर्थंकर प्रकृति का उदय।

## असंभव दोष

**लक्खे लक्खणं होदि, असंभवो जत्थ तत्थ णादव्वो।**
**असंभवो दोसो जह, कवलाहारो दु केवलिणो॥240॥**

**अर्थ**–जहाँ लक्ष्य में लक्षण असंभव होता है वह असंभव दोष जानना चाहिए जैसे केवलियों के कवलाहार।

## विशेष व सामान्य लक्षण

**बहु-अवेक्खाए हु बहु-लक्खणाइं विज्जंते वत्थुम्मि।**
**होज्ज कइय-विसेसाणि, अण्ण-सव्व-सामण्णाणि तह॥241॥**

**अर्थ**–बहुत अपेक्षा से वस्तु में बहुत लक्षण विद्यमान होते हैं उनमें कुछ विशेष तथा अन्य सभी सामान्य होते हैं।

**विसेसलक्खणेहिं हि, विसेसा य दव्व-खेत्त-कालादी।**
**विसेसत्तेहि विणा ण, इह लोए किंचिवि विसेसो॥242॥**

**अर्थ**–विशेष लक्षणों से ही द्रव्य, क्षेत्र और काल आदि विशेष होते हैं। विशेषत्व के बिना इस लोक में कुछ भी विशेष नहीं होता।

### द्रव्य के साथ गुण अन्वयी

**ण संभवो सामण्णं, विणा विसेसो तहेव सामण्णो।**
**विज्जंते दु वत्थुम्मि, ते णिच्चं गुणो सहभुवो दु।।243।।**

**अर्थ**–सामान्य के बिना विशेष और उसी प्रकार विशेष के बिना सामान्य संभव नहीं है। गुण नित्य ही वस्तु में रहते हैं। गुण निश्चय से द्रव्य में अन्य गुणों के साथ हमेशा रहते हैं।

### व्यवहार व शुद्ध लक्षण

**ववहार-लक्खणं वत्थूण लोए ववहार-वट्टणस्स।**
**सुद्धणिच्छयेण सुद्ध-लक्खणं सया मुणेदव्वं।।244।।**

**अर्थ**–लोक में व्यवहार के वर्तन के लिए वस्तुओं का व्यवहार लक्षण जानना चाहिए एवं शुद्ध निश्चय से शुद्ध लक्षण जानना चाहिए।

## IX. प्रमाणाधिकार

### सम्यग्ज्ञान ही प्रमाण

**सण्णाणं हि पमाणं, पमाणभूदं सगवराण सय तं।**
**पमाणं खलु पणमामि, सयलपमाण-लद्धीए हं।।245।।**

**अर्थ**–सम्यग्ज्ञान ही प्रमाण है। वह सम्यग्ज्ञान सदा स्वपर के लिए प्रमाणभूत है। सकलप्रमाण की प्राप्ति के लिए उस प्रमाण को मैं (आचार्य वसुनंदी मुनि) नमस्कार करता हूँ।

**लोए णाण-पमाणं, परं मिच्छाणाणं णेव कया वि।**
**सण्णाणं हि पमाणं, संसयाइ-दोस-विरहिदं हु॥246॥**

**अर्थ**—लोक में, ज्ञान प्रमाण है किन्तु मिथ्याज्ञान कभी भी प्रमाण नहीं है। संशयादि दोष से रहित सम्यग्ज्ञान ही प्रमाण है।

## प्रत्यक्ष व परोक्ष प्रमाण

**पच्चक्ख-परोक्खाणं, भेयादु पमाण-दुविहं मुक्खेण।**
**मदिसुदणाणपरोक्खं, सेसं च पच्चक्खपमाणं॥247॥**

**अर्थ**—मुख्य रूप से परोक्ष व प्रत्यक्ष के भेद से प्रमाण दो प्रकार का होता है। मति व श्रुत ज्ञान परोक्ष प्रमाण व शेष ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

## परोक्ष प्रमाण

**फासादिंदियणिंदिय-णिमित्तेणं दु हवेदि णाणं जं।**
**खओवसमियमविसदं, परोक्ख-पमाणं तं णेयं॥248॥**

**अर्थ**—जो ज्ञान स्पर्शादि इंद्रिय और अनीन्द्रिय के निमित्त से होता है वह क्षायोपशमिक व अस्पष्ट ज्ञान परोक्ष प्रमाण है।

**जहवि इंदियणाणं हु, संववहारं णायावेक्खाए।**
**पच्चक्खं णादव्वं, णेव परोक्खं जिणुद्दिट्ठं॥249॥**

**अर्थ**–यद्यपि न्याय की अपेक्षा इंद्रिय ज्ञान सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष जानना चाहिए, परोक्ष नहीं; ऐसा जिनेंद्र देव के द्वारा कहा गया है।

## *प्रत्यक्ष ज्ञान*

**पच्चक्खणाण-दुविहं, संववहारिगं परमट्ठिगं तह।**
**इंदियणिंदियेहि जं, होज्जा संववहारिगं तं॥250॥**

**अर्थ**–प्रत्यक्ष ज्ञान दो प्रकार का है–सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और पारमार्थिक प्रत्यक्ष। जो इंद्रिय व अनिन्द्रिय के द्वारा होता है वह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष जानना चाहिए।

## *सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष के भेद*

**अवग्गहीहावाया, धारणा संववहारिगं चदुहा।**
**मदिणाणस्स भेया वि, छत्तीस-समहिद-तिण्णिसया॥251॥**

**अर्थ**–सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष चार प्रकार का है–अवग्रह, ईहा, अवाय और धारण। मतिज्ञान के तीन सौ छत्तीस भेद भी हैं।

## पारमार्थिक प्रत्यक्ष के भेद

**परमट्ठिगो वि दुविहो, भेयादो तहा सयलवियलाणं।**
**कइवयविसयं वियलं, ओही मणपज्जयं दुविहं।।252।।**

**अर्थ**–सकल और विकल के भेद से पारमार्थिक प्रत्यक्ष दो प्रकार का है। कुछ पदार्थों को विषय करने वाला विकल प्रत्यक्ष दो प्रकार का है–अवधिज्ञान और मन:पर्यय ज्ञान।

## अवधिज्ञान

**मज्जादाए हु दव्वखेत्तकालभावाण जुद-रूवीण।**
**अत्थाण णाणमोही, बेविहं च सम्मं विभंगं।।253।।**

**अर्थ**–द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा से युक्त रूपी पदार्थों के ज्ञान को अवधिज्ञान कहते हैं। वह दो प्रकार का है–सम्यक् अवधिज्ञान व विभंगावधि ज्ञान।

## अवधिज्ञान भेद

**ओहिणाणं वि दुविहं, भेयादो भवगुणपच्चयाणं च।**
**भवपच्चयं वि पुण सुर-णेरइयाण सम्ममिच्छाण।।254।।**

**अर्थ**–भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय के भेद से अवधिज्ञान दो प्रकार का भी होता है। भवप्रत्यय भी पुन: देव व नारकी के अथवा सम्यक् व मिथ्या के भेद से दो प्रकार का होता है।

## भवप्रत्यय अवधिज्ञान

**जस्स ओहिणाणस्स दु, पच्चयं हवेदि भवो णियमेणं।**
**भवपच्चयोहिणाणं, तिरियेसु णरेसु णो कया वि॥255॥**

**अर्थ**–जिस अवधिज्ञान का प्रत्यय नियम से भव होता है वह भव प्रत्यय अवधिज्ञान है। तिर्यंचों व मनुष्यों में वह कभी नहीं होता।

## गुणप्रत्यय अवधिज्ञान

**सम्मत्तावेक्खाए, ओहिणाणावरण-खओवसमेण।**
**णिप्फज्जदि गुणपच्चय-मोहिणाणं णरतिरियेसुं॥256॥**

**अर्थ**–सम्यक्त्व की अपेक्षा अवधिज्ञानावरण के क्षयोपशम से नर व तिर्यंचों में गुणप्रत्यय अवधिज्ञान निष्पन्न होता है।

**गुणपच्चयं च तिविहं, देस-परम-सव्वोहीण भेयादु।**
**देसोहिणाणं दुविह-मट्ठविहं छव्विहं णेयं॥257॥**

**अर्थ**–देशावधि, परमावधि व सर्वावधि के भेद से गुणप्रत्यय तीन प्रकार का है। देशावधि ज्ञान दो, छः या आठ प्रकार का जानना चाहिए।

**अणुगामी वड्ढमाण-मवट्ठिदं इयरं तह छव्विहं हु।**
**पडिपाडि-अप्पडिपाडि-जुद-मट्ठविह-णाणं णेयं।।258।। युग्मं**

**अर्थ**–अनुगामी, वर्द्धमान, अवस्थित तथा इतर अर्थात् अननुगामी, हीयमान, अनवस्थित इस प्रकार देशावधि छः प्रकार का जानना चाहिए एवं ये छः प्रतिपाति व अप्रतिपाति से युक्त आठ प्रकार का अवधिज्ञान जानना चाहिए।

## *विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष भेद*

**वियलपरमट्ठियं मण-पज्जयणाणं वि बेविहं णेयं।**
**उजुमदी विउलमदी य, एरिसो हु जिणवरुवएसो।।259।।**

**अर्थ**–विकल पारमार्थिक मनःपर्यय ज्ञान भी दो प्रकार का जानना चाहिए–ऋजुमति और विपुलमति। ऐसा निश्चय से जिनेन्द्र भगवान् का उपदेश है।

## *मनःपर्यय ज्ञान*

**परचित्तट्ठिद-चिंतिय-मचिंतियमद्धचिंतियं वियारं।**
**जाणेदि मणपज्जयं, जं तं विसुद्धं ओहीदो।।260।।**

**अर्थ**–जो दूसरे के चित्त में स्थित चिंतित, अचिंतित या अर्द्धचिंतित विचार को जानता है वह मनःपर्ययज्ञान है। वह अवधिज्ञान की अपेक्षा अधिक विशुद्ध होता है।

## सकल प्रत्यक्ष ज्ञान

**सयलपच्चक्खणाणं, खइयणाणं वा केवलं णाणं।**
**सव्वदव्वपज्जायं, गुणं जाणदि तियालविट्ठी।।261।।**

**अर्थ**–क्षायिकज्ञान या केवलज्ञान सकलप्रत्यक्ष ज्ञान है। वह त्रिकालवर्ती सर्व द्रव्य, सर्व पर्याय व सर्व गुणों को युगपत् जानता है।

## केवलज्ञानी व श्रुतज्ञानी का विषय

**केवलणाणं जाणदि, सव्व-दव्व-गुण-पज्जायं जुगवं।**
**सुदं सव्वदव्व-गुणा, कमेणं किंचिवि-पज्जाया।।262।।**

**अर्थ**–केवलज्ञान सभी द्रव्य, गुण और पर्यायों को युगपत् जानता है। श्रुतज्ञान सभी द्रव्य, गुण और किंचित् पर्यायों को क्रमशः जानता है।

## श्रुतज्ञान बिना केवलज्ञान नहीं

**सुदणाणं हु जणगोव्व, केवलणाणं पुत्तोव्व जाणेज्ज।**
**जणगं विणा ण पुत्तो, सुदं विणा केवलं जह तह।।263।।**

**अर्थ**–निश्चय से श्रुतज्ञान पिता के समान और केवलज्ञान पुत्र के समान जानना चाहिए। जैसे पिता के बिना पुत्र नहीं होता वैसे ही श्रुतज्ञान के बिना केवलज्ञान नहीं होता।

## स्वार्थ-परार्थ ज्ञान

**मदी सुदोही णाणं, मणपज्जयं तह केवलं णाणं।**
**पंचणाणं सत्थं वि, सुदणाणं परत्थं णेयं।।264।।**

**अर्थ**–मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्यय ज्ञान तथा केवलज्ञान ये पाँच ज्ञान स्वार्थ ज्ञान हैं किन्तु श्रुतज्ञान परार्थ भी जानना चाहिए।

## परोक्ष प्रमाण भेद

**परोक्खपमाणं पंचविहं सई पच्चभिणाणं णेयं।**
**तक्को अणुमाणं तह, आगमो णायावेक्खाए।।265।।**

**अर्थ**–न्यायापेक्षा से परोक्ष प्रमाण पाँच प्रकार का जानना चाहिए–स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान तथा आगम।

## स्मृति

**पुव्वजाणिद-वत्थुस्स, सुमरण-करणं सई वट्टमाणे।**
**पुव्वसक्कारो तहा, तस्स कारणं सय जाणेज्ज।।266।।**

**अर्थ**–पूर्व में जानी हुई वस्तु का वर्तमान में स्मरण करना स्मृति है। तथा उस स्मृति का कारण सदा पूर्व संस्कार जानना चाहिए।

## *प्रत्यभिज्ञान*

**पच्चक्ख-संववहार-णाणं जं तं होदि सई-जुत्तं।**
**पच्चभिणाणं बहुविह-मेगत्ताइ-भेयादो खलु॥267॥**

**अर्थ**–जो प्रत्यक्ष सांव्यवहारिक ज्ञान स्मृति से युक्त होता है वह निश्चय से प्रत्यभिज्ञान जानना चाहिए। यह एकत्वादि के भेद से बहुत प्रकार का है।

**पच्चक्ख-सई-जुत्तं, पच्चभिणाणं णेयं जिणसुत्ते।**
**केण वि एगेण विणा, णेव संभवो तं कया वि दु॥268॥**

**अर्थ**–जिनागम में प्रत्यक्ष व स्मृति से युक्त प्रत्यभिज्ञान जानना चाहिए। किसी भी एक के बिना वह कदापि भी संभव नहीं है।

## *प्रत्यभिज्ञान भेद*

**णाणमणेगविहं तं, सारिस-मेगत्तं वइसारिसं च।**
**पाडिजोगियं आदी, पच्चभिणाणं मुणेदव्वं॥269॥**

**अर्थ**–वह ज्ञान अनेक प्रकार का जानना चाहिए। जैसे–एकत्व प्रत्यभिज्ञान, सादृश्य प्रत्यभिज्ञान, वैसादृश्य प्रत्यभिज्ञान तथा प्रातियोगिक प्रत्यभिज्ञान आदि।

## एकत्व प्रत्यभिज्ञान

**इत्थं जाणणं इदं, तदेव अत्थि एगत्तं जह जाण।**
**अयं सो एव पुरिसो, विदियवत्थुं होदि अस्सिं ण॥270॥**

**अर्थ**–'यह वही है' इस प्रकार जानना एकत्व प्रत्यभिज्ञान जानना चाहिए। जैसे यह वह ही पुरुष है। इसमें दूसरी वस्तु नहीं होती।

## सादृश्य प्रत्यभिज्ञान

**जाणणमित्थं णेयं, वत्थुमिदं पुव्वजाणिदवत्थुं व।**
**सारिसपच्चभिणाणं, जह रयणमिदं मम रयणं व॥271॥**

**अर्थ**–यह वस्तु पूर्व में जानी हुई वस्तु के समान है इस प्रकार जानना सादृश्य प्रत्यभिज्ञान है। जैसे यह रत्न मेरे रत्न के समान है।

## वैसादृश्य प्रत्यभिज्ञान

**पुव्वणादवत्थूदो, वइसारिसं दु वत्थुमिदं इत्थं।**
**जाणणं वइसारिसं, पउमपुप्फं पाडलादु जह॥272॥**

**अर्थ**–यह वस्तु पूर्व में जानी वस्तु से वैसादृश्य है। इस प्रकार जानना वैसादृश्य प्रत्यभिज्ञान है। जिस प्रकार कमल का पुष्प उस गुलाब के पुष्प से भिन्न (वैसादृश्य) है।

## प्रातियोगिक प्रत्यभिज्ञान

**पुव्वजाणिद-वत्थूदु, दूरमिदं अप्पबहुं णिगडं वा।**
**लहू दीहं जाणणं, इत्थं पाडिजोगिय-णाणं।।273।।**

**अर्थ**–पूर्व में जानी हुई वस्तु से यह दूर है, निकट है, कम है, ज्यादा है, लघु है, दीर्घ है इस प्रकार जानना प्रातियोगिक प्रत्यभिज्ञान है।

## तर्क

**वत्तिणाणं हु ऊहो, उवलंभाणुवलंभणिमित्तं वा।**
**तक्को अविणाभावी, संबंधो वत्ती जाणेज्ज।।274।।**

**अर्थ**–उपलंभ व अनुपलंभ के निमित्त व्याप्ति का ज्ञान ऊह या तर्क है। अविनाभावी संबंध को व्याप्ति जानना चाहिए।

## अविनाभावी संबंध

**जत्थ साहणं तत्थ वि, सज्झं साहणं ण विणा सज्झेण।**
**अग्गिं विणा ण धूमो, जह अविणाभावि-संबंधो।।275।।**

**अर्थ**–जहाँ-जहाँ साधन है वहाँ-वहाँ साध्य है। साध्य के बिना साधन का नहीं होना अविनाभावी संबंध है। जैसे–अग्नि के बिना धूम नहीं होता। (धुँआ, अग्नि के होने पर ही होता है)।

## द्विविध संबंध

**सो संबंधो दुविहो, सहभावणियमो कमभावणियमो।**
**गुणेहि सह गुणा जहा, रूवरसादी सहभावो हु॥276॥**
**जत्थ पदत्थेसुं खलु, हवेदि कमभावो णियमादो सो।**
**अक्कसोमवारादी, जह कमभावणियमो णेयो॥277॥ (जुगवं)**

**अर्थ**–वह (अविनाभावी) संबंध दो प्रकार का है–सहभाव नियम व क्रमभाव नियम। गुणों के साथ गुण सहभाव नियम है जैसे रूप, रस आदि। जहाँ पदार्थों में सदा क्रमभाव होता है वह नियम से क्रमभाव नियम जानना चाहिए जैसे–रविवार, सोमवार आदि।

## अनुमान ज्ञान

**साहणादो सज्झस्स, णाणं हु अणुमाणं मुणेदव्वं।**
**अणुमाणं बेविहं च, सत्थपरत्थाण भेयादो॥278॥**

**अर्थ**–साधन से साध्य का ज्ञान अनुमान ज्ञान जानना चाहिए। अनुमान स्वार्थ व परार्थ के भेद से दो प्रकार का है।

## स्वार्थ व परार्थानुमान

**परोवदेसेण विणा, जं णाणं च सत्थमणुमाणं तं।**
**परोवदेसेण होदि, परत्थणाणं जाणिदव्वं॥279॥**

**अर्थ**–जो ज्ञान परोपदेश के बिना होता है वह स्वार्थानुमान है और जो परोपदेश से होता है वह परार्थानुमान जानना चाहिए।

**धूमादो सयमेव दु, अग्गिणाणं सत्थणुमाण-णाणं।**
**धूमादु अग्गिणाणं, परोवदेसेण परत्थं च॥280॥**

**अर्थ**–स्वयं ही धूएँ से अग्नि का ज्ञान होना स्वार्थानुमान ज्ञान है और परोपदेश से धूएँ से अग्नि का ज्ञान होना परार्थानुमान है।

## साध्य

**अभिप्पेयमबाहिदं, असिद्धो चिय अप्पसिद्धो अहवा।**
**वायि-पडिवायीणं च, सज्झं जं तं मुणेदव्वं॥281॥**

**अर्थ**–जो अभिप्रेत, अबाधित व वादी-प्रतिवादियों के लिए असिद्ध या अप्रसिद्ध है वह साध्य जानना चाहिए।

## साधन

**अविणाभावी जं खलु, सज्झेण सह साहणं तं णेयं।**
**जेण विणा ण संभवो, सज्झ-सिद्धी जह धूमग्गी॥282॥**

**अर्थ**–जो साध्य के साथ अविनाभावी है, जिसके बिना साध्य की सिद्धि संभव नहीं है वह साधन जानना चाहिए जैसे धूम-अग्नि। धूम (साधन) के बिना अग्नि (साध्य) की सिद्धि संभव नहीं है।

## अनुमान के अंग

**बे अंगो य पदिण्णा, हेदू अणुमाणस्स मुणेदव्वो।**
**अणुमाणं णाणं णो, संभवो विणा दोण्णि-अंगं॥283॥**

**अर्थ**–अनुमान के प्रतिज्ञा व हेतु ये दो अंग जानने चाहिए। दोनों अंग के बिना अनुमान ज्ञान संभव नहीं है।

**पदिण्णा-हेदुवणयं उदाहरणं णिगमणं णादव्वं।**
**पंचंग-मणुमाणस्स, जिणसमयेण वि बुहजणेहिं॥284॥**

**अर्थ**–जिन शास्त्र से बुधजनों के द्वारा अनुमान के ये पाँच अंग भी जानने चाहिए–प्रतिज्ञा, हेतु, उपनय, उदाहरण और निगमन।

## प्रतिज्ञा

**पक्खवयणं पदिण्णा, सज्झधम्मसंजुद-धम्मी पक्खो।**
**पव्वयो अग्गिमाणो, इदं तम्मि पव्वयो धम्मी॥285॥**

**अर्थ**–पक्ष के वचन को प्रतिज्ञा कहते हैं। साध्य धर्म से युक्त धर्मी पक्ष कहलाता है। जैसे यह पर्वत अग्निवान् है उसमें पर्वत धर्मी है।

## हेतु

**अविणाभावी खलु जो, सज्झेणं सह हेदू णेयो सो।**
**अविणाभावीदु तस्स, हेदू जह धूमो अणलस्स॥286॥**

**अर्थ**–जो साध्य के साथ अविनाभावी है वह हेतु जानना चाहिए। जैसे धूम अग्नि का अविनाभावी होने से उसका हेतु है।

## उदाहरण

**सम्म-दिट्ठंतवयणं, उदाहरणं बेविहो दिट्ठंतो।**
**अण्णयो वदिरेगो य, जिणवरेणं खलु णिद्दिट्ठो॥287॥**

**अर्थ**–सम्यक् दृष्टांत का वचन उदाहरण जानना चाहिए। जिनवर के द्वारा दृष्टांत दो प्रकार का कहा गया है–अन्वय और व्यतिरेक।

## अन्वय दृष्टांत

**पेच्छिज्जदि सज्झेणं, सह साहणवत्ती अण्णयो जत्थ।**
**जह रसवई जाणेज्ज, साहम्मो अवरणामो खलु॥288॥**

**अर्थ**–जहाँ साध्य के साथ साधन की व्याप्ति देखी जाती है वह निश्चय से अन्वय दृष्टांत जानना चाहिए। जैसे–रसोईघर। साधर्म्य भी इसका अपर नाम है।

## व्यतिरेक दृष्टांत

**अवअक्खिज्जदे जत्थ, सज्झाभावम्मि साहणाभावो।**
**वदिरेगो वेधम्मो, दिट्ठंतो जह जलासयो दु॥289॥**

**अर्थ**–जहाँ साध्य के अभाव में साधन का अभाव देखा जाता है वह व्यतिरेक या वैधर्म्य दृष्टांत कहलाता है जैसे–जलाशय। जलाशय में धूम व अग्नि का अभाव है।

## उपनय व निगमन

**उवणयो खलु हेदुस्स, उवसंहारो जिणवरदेवेहिं।**
**णिगमणं पदिण्णाए, उवसंहारो य णिद्दिट्ठो॥290॥**

**अर्थ**–जिनेन्द्र देवों के द्वारा हेतु का उपसंहार उपनय तथा प्रतिज्ञा का उपसंहार निगमन निर्दिष्ट किया गया है।

## वीतराग कथा

**रायदेसरहिदेसुं, गुरुसिस्सेसु वा वयण-वावारो।**
**तच्चणिण्णयट्ठं तह, परोप्परे वीयराय-कहा॥291॥**

**अर्थ**–गुरु-शिष्य अथवा राग-द्वेष से रहित जीवों में तत्त्वनिर्णय के लिए परस्पर में जो वचन व्यापार होता है वह वीतराग कथा है।

## विजिगीषु कथा

**समद-ठावणत्थं जय-पराजयं तं वायिपडिवायीसु।**
**विजिगीसु-कहा णेया, परोप्परे वयण-वावारो॥292॥**

**अर्थ**–वादी-प्रतिवादी में स्वमत की स्थापना के लिए जय व पराजय तक परस्पर में होने वाला वचन व्यापार विजिगीषु कथा जाननी चाहिए।

## विजिगीषु व वीतराग कथा में अंग

**विजिगीसु-कहाए खलु, बे-अंगो किण्णु वीयरायम्मि।**
**उदाहरणमुवणयं च, णिगमणं दु अणुमाणस्स अवि॥293॥**

**अर्थ**–विजिगीषु कथा में अनुमान के दो (प्रतिज्ञा व हेतु) अंग होते हैं किन्तु वीतराग कथा में उदाहरण, उपनय और निगमन भी होते हैं।

## वीतराग कथा में 2, 3, 4 या 5 अंग

**पुरिसस्स गमणम्मि खलु, पहाणहेदू होदि गमणकिरिया।**
**छाया वि पयासादो, किण्णु णेव आवस्सगा सा॥294॥**
**वीयराय-कहाइ बे-ति-चत्तारि-पंचंगा वा तहेव।**
**णावसियं पंचंगा, विजिगीसुम्मि सव्वदा दोण्णि॥295॥ (जुगवं)**

**अर्थ**–जैसे पुरुष के गमन में प्रधान कारण निश्चय से गमनक्रिया होती है। प्रकाश होने से छाया भी साथ में होती है किन्तु वह अनिवार्य नहीं है। वैसे ही वीतराग कथा में दो, तीन, चार या पाँच अंग होते हैं। किन्तु पाँच अंग ही हों यह आवश्यक नहीं है। विजिगीषु कथा में सदा दो ही अंग होते हैं।

## आगम

**अत्तेहि सुप्पणीदो, संगहीदो गणहरदेवेहिं च।**
**मुणीहि लिहिदो णेयो, आगमो दु सवर-हिद-हेदू॥296॥**

**अर्थ**–आप्त के द्वारा प्रणीत, गणधर देवों के द्वारा संग्रहीत और मुनियों के द्वारा लिखित आगम जानना चाहिए। वह निश्चय से स्वपर हित का हेतु है।

**सम्मद्दिट्ठी सव्वा, जिणागमं खलु मण्णंति पमाणं।**
**अत्थखावग-आगमो, जुत्तिजुत्त-दोसविहीणो य॥297॥**

**अर्थ**–सभी सम्यग्दृष्टि निश्चय से जिनागम को प्रमाण मानते हैं। वह आगम अर्थ का ख्यापक, युक्तियुक्त और दोष से विहीन है।

## हेत्वाभासादि मिथ्या

**हेदु-लक्खणाभासो, पमाण-दिट्ठंत-णिगमणाभासो।**
**मिच्छा तं उज्झेज्जा, उवणयाइ-सव्वाभासा हु॥298॥**

**अर्थ**–हेत्वाभास, लक्षणाभास, प्रमाणाभास, दृष्टांताभास, निगमनाभास व उपनयाभास आदि सभी आभास निश्चय से मिथ्या हैं अतः उन्हें छोड़ना चाहिए।

**जो जहा होदि ण किण्णु, तह भासदि तण्णामाभासो सो।**
**भेदणुसारेण जाण, अत्थ विसेसं भणिस्सामो॥299॥**

**अर्थ**–जो जैसा नहीं है किन्तु उस प्रकार प्रतिभासित होता है वह उस नाम वाला आभास जानना चाहिए। भेद के अनुसार उन सबको जानना चाहिए। यहाँ विशेष को कहता हूँ।

## प्रमाणाभास

**पमाणं ण पमाणं व, भासेदि पमाणाभासो जो सो।**
**पच्चक्खपरोक्खाणं, भेयादु दुविहो णादव्वो॥300॥**

**अर्थ**–जो प्रमाण नहीं है किन्तु प्रमाण के समान प्रतिभासित होता है वह प्रमाणाभास है। वह प्रत्यक्ष प्रमाणाभास व परोक्ष प्रमाणाभास के भेद से दो प्रकार का जानना चाहिए।

## अनुमानाभास भेद

**अणुमाणाभासो पण-विहो पक्खाभास-हेच्चाभासो।**
**दिट्ठंतुवणयणिगमण-आभासो खलु मुणेदव्वो॥301॥**

**अर्थ**–अनुमानाभास पाँच प्रकार का जानना चाहिए–पक्षाभास, हेत्वाभास, दृष्टान्ताभास, उपनयाभास, आगमाभास।

## पक्षाभास

**जो णो पक्खो किण्णु, पक्खोव्व पडिभासेदि णियमेणं।**
**पक्खाभासो णेयो, सो उज्झणीयो णाणीहिं॥302॥**

**अर्थ**–जो पक्ष तो नहीं है किन्तु पक्ष के समान प्रतिभासित होता है वह पक्षाभास जानना चाहिए, वह ज्ञानियों के द्वारा नियम से त्याज्य है।

## पक्षाभास भेद एवं अनिष्ट पक्षाभास

**तिविहो पक्खाभासो, अणिट्ठ-सिद्ध-बाहिदा भेयादु।**
**वायिणो ण इट्ठो जो, तं पक्ख-कहणं अणिट्ठो दु॥303॥**

**अर्थ**–अनिष्ट, सिद्ध और बाधित के भेद से पक्षाभास तीन प्रकार का जानना चाहिए। जो वादी के लिए इष्ट न हो उसे पक्ष कहना अनिष्ट पक्षाभास जानना चाहिए।

## सिद्धपक्षाभास

**सिद्धो पक्खाभासो, पुव्वसिद्धं पक्ख-सीसणं जाण।**
**जह अग्गी उण्हो तह, सीयला तरंगिणी सलिलो॥304॥**

**अर्थ**–पूर्व सिद्ध अर्थात् जो पहले से ही सिद्ध हो उसे पक्ष कहना सिद्ध पक्षाभास है। जैसे नदी का जल शीतल है।

**पच्चक्खणुमाणागम-लोय-सगवयणेहिं बाहिदो जो।**
**पक्खो सो णादव्वो, बाहिदो चिय पक्खाभासो॥305॥**

**अर्थ**–जो पक्ष प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, लोक या स्ववचन से बाधित है वह निश्चय से बाधित पक्षाभास जानना चाहिए।

**बाहिद-पक्खाभासो, पंचविहो पच्चक्खमणुमाणं च।**
**आगमलोयसगवयण-बाहिदो समयेणं णेयो।।306।।**

**अर्थ**–बाधित पक्षाभास पाँच प्रकार का जानना चाहिए– प्रत्यक्षबाधित, अनुमानबाधित, आगमबाधित, लोकबाधित और स्ववचन बाधित।

## *प्रत्यक्षबाधित*

**पच्चक्खेण बाहिदो, जो सो पच्चक्खबाहिदो णेयो।**
**जह अग्गी सीयलो हु, चंदगहत्थी तहा उण्हो।।307।।**

**अर्थ**–जो पक्ष प्रत्यक्ष से बाधित है वह निश्चय से प्रत्यक्ष बाधित पक्षाभास जानना चाहिए। जैसे अग्नि शीतल है तथा चंद्रमा की किरण ऊष्ण है।

## *अनुमान बाधित*

**अणुमाणेण बाहिदो, अणुमाणबाहिदो पक्खाभासो।**
**जो सो खलु णादव्वो, जहा अपरिणामी दु सद्दो।।308।**

**अर्थ**–जो पक्ष अनुमान से बाधित है वह निश्चय से अनुमान बाधित पक्षाभास जानना चाहिए। जैसे शब्द अपरिणामी हैं।

## आगमबाधित

**बाहिदो आगमेणं, आगमबाहिदो पक्खाभासो दु।**
**जो सो णादव्वो चिय, जह दुक्खं होदि धम्मेणं।।309।।**

**अर्थ**–जो पक्ष आगम से बाधित है वह निश्चय से आगमबाधित पक्षाभास है। जैसे धर्म से दु:ख होता है।

## लोकबाधित

**लोयववहारेणं च, बाहिदो दु लोयबाहिदो जो सो।**
**माणुसस्स सिरो होदि, जह पवित्तो संख-सिप्पीव।।310।।**

**अर्थ**–जो पक्ष लोकव्यवहार से बाधित है वह निश्चय से लोकबाधित पक्षाभास है जैसे मनुष्य का सिर शंख-सीप के समान पवित्र होता है।

## स्ववचनबाधित

**सगवयणेण बाहिदो, जो सो सगवयणबाहिदो णेयो।**
**जह मम मादू बंझा, मदणोव्व पुत्तो हं ताए।।311।।**

**अर्थ**–जो पक्ष स्ववचन से बाधित है वह स्ववचनबाधित पक्षाभास जानना चाहिए। जैसे मेरी माता बंध्या है, मैं उनका कामदेव के समान पुत्र हूँ।

## हेत्वाभास

**जो भासदि हेदू इव, किण्णु हवेदि सम्मं हेदू णेव।**
**णिच्छयेण बुहजणेहि, हेच्चाभासो दु सो णेयो॥312॥**

**अर्थ**–जो हेतु के समान भासित होता है किन्तु सम्यक् हेतु नहीं होता वह बुधजनों के द्वारा निश्चय से हेत्वाभास जानना चाहिए।

## हेत्वाभास के भेद

**असिद्धो विरुद्धो चिय, अणेगंतो अकिंचिक्करो तहा।**
**चदुविह-हेच्चाभासो, समयण्हूहिं विणिद्दिट्ठो॥313॥**

**अर्थ**–समयज्ञ अर्थात् समय (आत्मा) को जानने वालों के द्वारा हेत्वाभास चार प्रकार का कहा गया है–असिद्ध, विरुद्ध, अनेकांत और अकिंचित्कर हेत्वाभास।

## असिद्ध हेत्वाभास

**जो सयमेव असिद्धो, हेदू सो असिद्ध-हेच्चाभासो।**
**सरूवसंदिद्धाणं, भेयादो बेविहो णेयो॥314॥**

**अर्थ**–जो हेतु स्वयं ही असिद्ध है वह असिद्ध हेत्वाभास है। स्वरूप और संदिग्ध के भेद से वह दो प्रकार का जानना चाहिए।

## स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास

**सरूवासिद्धो जो हु, जस्स हेदुस्स सरूवाभावो य।**
**जह सद्दो परिणामी, जम्हा सो चक्खुसो णेयो॥315॥**

**अर्थ**–जिस हेतु के स्वरूप का अभाव है वह स्वरूप असिद्ध हेत्वाभास जानना चाहिए। जैसे शब्द परिणामी है क्योंकि वह चाक्षुष है।

**सद्दो खलु परिणामी, पज्जायादो पोग्गलस्स णेयो।**
**किण्णु णो चक्खु-विसयो, तं इदं हेदू असिद्धो हु॥316॥**

**अर्थ**–पुद्गल की पर्याय होने से शब्द परिणामी जानना चाहिए, किन्तु यह चक्षु का विषय नहीं है इसीलिए यह हेतु असिद्ध है।

## संदिग्धासिद्ध हेत्वाभास

**होदि संदिग्घो जस्स, हेदुस्स सरूवो सो विआणेज्ज।**
**संदिद्धासिद्धो जह, पंको सीयलो वत्थूदो॥317॥**

**अर्थ**–जिस हेतु का स्वरूप संदिग्ध होता है वह संदिग्धासिद्ध हेत्वाभास जानना चाहिए। जैसे पंक शीतल है, वस्तु होने से।

## विरुद्ध हेत्वाभास

**सज्झविवरीदत्थेहि, सह अविणाभावो जस्स होदि सो।**
**विरुद्धाभासो हु जह, खं अमुत्तिगो रसजुदादो॥318॥**

**अर्थ**–साध्य के विपरीत पदार्थ के साथ जिसका अविनाभाव होता है वह विरुद्ध हेत्वाभास कहलाता है। जैसे आकाश अमूर्तिक है, रस युक्त होने से।

## अनैकांतिक हेत्वाभास का स्वरूप व भेद

**अणेगंतिगो हु जस्स, वित्ती पक्खसपक्खविपक्खेसुं।**
**सो दुविहो णादव्वो, णिच्छिदसंकिदाण भेयादु॥319॥**

**अर्थ**–जिसकी वृत्ति पक्ष, सपक्ष व विपक्ष तीनों में होती है वह अनैकांतिक हेत्वाभास कहलाता है। वह निश्चित विपक्षवृत्ति व शंकित विपक्षवृत्ति के भेद से दो प्रकार का जानना चाहिए।

## निश्चित विपक्षवृत्ति हेत्वाभास

**णिच्छयेणं विपक्खे, जस्स वित्ती सो णिच्छिदविपक्खो।**
**पमेयो दु जं सद्दाणिच्चो जह किण्णु णहादी वि॥320॥**

**अर्थ**–निश्चय से विपक्ष में जिस हेतु की वृत्ति है वह निश्चित विपक्ष वृत्ति हेत्वाभास है। जैसे शब्द अनित्य है क्योंकि प्रमेय है किन्तु आकाश आदि भी प्रमेय है। यहाँ प्रमेय हेतु निश्चित विपक्ष वृत्ति हेत्वाभास है क्योंकि वह नित्य आकाश आदि में भी रहता है।

## शंकित विपक्ष वृत्ति हेत्वाभास

**विपक्खे जस्स वित्ती, संदिद्धो सो संकिदविपक्खो य।**
**जह गगणममुत्तिगं दु, अचेयणादो मुणेदव्वो॥321॥**

**अर्थ**–विपक्ष में जिस हेतु की वृत्ति संदिग्ध है वह शंकित विपक्षवृत्ति हेत्वाभास जानना चाहिए जैसे आकाश अमूर्तिक है, अचेतन होने से।

## अकिंचित्कर हेत्वाभास

**सज्झस्स सिद्धीए हि, किंचिवि णो कुव्वदि जो सो णेयो।**
**अप्पजोयगो-हेदू, अकिंचिक्कर-हेच्चाभासो॥322॥**

**अर्थ**–जो साध्य की सिद्धि के लिए कुछ भी नहीं करता वह अप्रयोजक हेतु अकिंचित्कर हेत्वाभास जानना चाहिए।

## दृष्टांताभास

**ण होदि दिट्ठंतो जो, किण्णु पडिभासदे दु दिट्ठंतोव्व।**
**दिट्ठंताभासो तह, अण्णयो वदिरेगो दुविहो॥323॥**

**अर्थ**–जो दृष्टांत नहीं है किंतु दृष्टांत के समान प्रतिभासित होता है वह दृष्टान्ताभास है। वह दो प्रकार का है–अन्वय दृष्टांताभास तथा व्यतिरेक दृष्टांताभास।

**ण हेदु-उवसंहारो, किण्णु भासेदि तदरूवो जो सो।**
**उवणयाभासो हु तं, सण्णाणस्स सय उज्झेज्जा॥324॥**

**अर्थ**—जो हेतु का उपसंहार नहीं है किन्तु उस रूप प्रतिभासित होता है वह उपनयाभास है। सम्यग्ज्ञान के लिए उसे त्याग देना चाहिए।

**अणत्तसकहिदं सत्थं, सियावाय-विरहिदं एयंत-जुदं।**
**हिंसगपोसगं जाण, कुसत्थं दु आगमाभासो॥325॥**

**अर्थ**—जो शास्त्र अनाप्त द्वारा कथित, स्याद्वाद से रहित, एकांत से युक्त, हिंसा का पोषण करने वाला है वह कुशास्त्र वा आगमाभास जानना चाहिए।

# X. निक्षेपाधिकार

## निक्षेप स्वरूप

**णामादीहि वत्थूणि, विआणेदुं उवाओ णिक्खेवो।**
**णामट्ठावणादव्व-भावाण चदुविहो भेयादु॥326॥**

**अर्थ**—नामादि के द्वारा वस्तुओं को जानने का उपाय निक्षेप है। वह नाम, स्थापना, द्रव्य व भाव के भेद से चार प्रकार का है।

**वत्थूणं हु णामाइ-खेवणं सुजुत्त-मग्गणुसारेण।**
**णिक्खेवो णादव्वो, रिआविदुं लोयववहारं।।327।।**

**अर्थ**–लोकव्यवहार चलाने के लिए सुयुक्त मार्ग के अनुसार वस्तुओं का नामादि क्षेपण करना निक्षेप है।

## *नाम व स्थापना निक्षेप*

**वत्थूण णामखेवण-मिदं वत्थुं तं णामणिक्खेवो।**
**ठावणमित्थं ठवणा, दुविह-सायारणिरायारो।।328।।**

**अर्थ**–वस्तुओं का नाम क्षेपण करना (रखना) नाम निक्षेप है। यह वस्तु वह है इस प्रकार स्थापना करना स्थापना निक्षेप है। वह दो प्रकार की है–साकार व निराकार।

## *स्थापना निक्षेप भेद*

**तदायारो वि णेयो, सायार-सब्भावाण य णामेण।**
**अतदायारो अवि तह, अणायारासब्भावाणं।।329।।**

**अर्थ**–तदाकार स्थापना साकार व सद्भाव के नाम से भी जाननी चाहिए। अतदाकार स्थापना अनाकार व असद्भाव के नाम से भी जाननी चाहिए।

## तदाकार स्थापना

**जं आकिदि-आदीणं, भेयादो हवेदि वत्थुं तहेव।**
**तस्सिं तस्स ठवणं दु, तदायार-ठवणा जाणेज्ज॥330॥**

**अर्थ**–जो वस्तु आकृति आदि के भेद से उसी प्रकार की होती है उसमें उसकी स्थापना करना तदाकार स्थापना जाननी चाहिए।

**जह पडिमाइ वीरस्स, राणि-मुत्तीए ताए राणीइ।**
**सीहस्स पडिबिंबम्मि, सीह-ठावणं तदायारो॥331॥**

**अर्थ**–जैसे महावीर स्वामी की प्रतिमा में महावीर स्वामी की, रानी की मूर्ति में उस रानी की, सिंह के प्रतिबिंब में सिंह की स्थापना करना तदाकार स्थापना है।

## अतदाकार स्थापना

**आयारादि-विहीणे, वत्थुम्मि इदं तमेव ठावणं दु।**
**पूआदीसुं जह पहु-ठावणं खलु अतदायारो॥332॥**

**अर्थ**–आकार आदि से विहीन वस्तु में यह वह ही है इस प्रकार स्थापना करना निश्चय से अतदाकार स्थापना है। जैसे सुपारी आदि में प्रभु की स्थापना करना।

**अक्खेसु गयस्साणं, ठावणं उट्ट-मंति-णिवादीणं।**
**वा पासाणखंडेसु, मुद्दादीण अतदायारो॥333॥**

**अर्थ**–गोटियों में हाथी, घोड़े, ऊँट, मंत्री, राजा आदि की स्थापना करना अथवा पाषाणखंडों में मुद्रा आदि की स्थापना करना अतदाकार स्थापना है।

## *निक्षेप बिना व्यवहार संभव नहीं*

**णिक्खेवं विणा लोय-ववहारो असंभवो णादव्वो।**
**कहं होज्ज ववहारो, णामादीसुं उवेक्खेसुं॥334॥**

**अर्थ**–निक्षेप के बिना लोक व्यवहार असंभव जानना चाहिए। नामादि की उपेक्षा करने पर व्यवहार कैसे हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता।

## *द्रव्य निक्षेप*

**भूद-भावीण कहणं, संपइयालम्मि कुव्वणं दव्वो।**
**णवरि वट्टमाणे पज्जायाभावो णेयो तस्स॥335॥**
**जह मुणिं जिण-सीसणं, बुड्ढं जुवा-उप्पालणं अहवा।**
**विज्जत्थिं चिइच्छओ, सिद्धं अरिहंत-पज्जरणं॥336॥ –जुगवं**

**अर्थ**–भूत और भावी का कथन वर्तमान काल में करना द्रव्य निक्षेप जानना चाहिए किन्तु विशेषता यह है कि वर्तमान में उस पर्याय का अभाव होता है। जैसे–मुनि को जिन कहना अथवा वृद्ध को युवा कहना, विद्यार्थी को चिकित्सक व सिद्ध को अरिहंत कहना।

## द्रव्य निक्षेप भेद व आगम द्रव्य

**दुविह-दव्व-णिक्खेवो, आगम-णोआगमाण भेयादो।**
**सत्थजाणगो संपइ, तस्सुवजोगरहिदागमो हु॥337॥**

**अर्थ**—आगम और नोआगम के भेद से द्रव्य निक्षेप दो प्रकार का है। शास्त्र को जानने वाला किन्तु वर्तमान में उसके उपयोग से रहित आगम द्रव्य है।

## नो आगम द्रव्य व भेद

**तस्स हु जीव-सरीरो, तिविहो णोआगमदव्वो णेयो।**
**जाणगसरीर-भावी तव्वदिरित्तो जिणागमेण॥338॥**

**अर्थ**—उस जीव का शरीर निश्चय से नोआगम द्रव्य जानना चाहिए। जिनागम से नोआगम द्रव्य तीन प्रकार का जानना चाहिए—ज्ञायक शरीर, भावी शरीर व तद्व्यतिरिक्त शरीर।

## ज्ञायक शरीर नो आगम द्रव्य व भेद

**जाणगस्स दु सरीरो, तियालगोयर-जाणगदेहो सो।**
**तिवियप्पो णादव्वो, वट्टमाणो भावी भूदो॥339॥**

**अर्थ**—ज्ञायक का त्रिकालगोचर शरीर ज्ञायकशरीर नोआगम द्रव्य है। वह तीन प्रकार का जानना चाहिए—वर्तमान, भूत व भावी।

## वर्तमान व भूतज्ञायक शरीर नो आगम द्रव्य

**वट्टमाणे उवओग-रहिद-जाणगस्स सरीरो पढमो।**
**जाणगस्स खलु भूदो, चुदादि-भूद-सरीरो जाण॥340॥**

**अर्थ**—वर्तमान में उपयोग से रहित ज्ञायक का शरीर वर्तमान नो आगम द्रव्य है। ज्ञायक का च्युत आदि भूत शरीर भूतज्ञायकशरीर नो आगम द्रव्य है।

## भूत ज्ञायक शरीर भेद व च्युत शरीर

**भूदो अवि तिवियप्पो, भेयादो चुद-चाविद-चत्ताणं।**
**कयलीघादेण विणा, पदिदसरीरो चुदो णेयो॥341॥**

**अर्थ**—भूत शरीर भी च्युत, च्यावित व त्यक्त के भेद से तीन प्रकार का है। कदलीघात (अकाल मरण) के बिना छूटा हुआ शरीर च्युत शरीर जानना चाहिए।

## च्यावित व त्यक्त शरीर

**कयलीघादेण-आउछिण्णादो चाविदो पदिददेहो।**
**चत्त-सरीरो तिविहो, गणहरदेवेहि णिद्दिट्ठो॥342॥**
**पाओवगमण-इंगिणि-भत्तपच्चक्खाणाण भेयादो।**
**एआहि विहीहि पदिद-सरीरो चत्तो णादव्वो॥343॥ (युग्मं)**

**अर्थ**–कदलीघात से आयु के छिन्न होने से छूटा हुआ शरीर च्यावित शरीर कहलाता है। त्यक्त शरीर गणधर देवों के द्वारा प्रायोपगमन, इंगिनी व भक्त प्रत्याख्यान के भेद से तीन प्रकार का कहा गया है। इन विधियों से छूटा शरीर त्यक्त शरीर जानना चाहिए।

## भावी ज्ञायक शरीर

**वट्टमाणे उवओग-रहिद-सत्थजाणगस्स तह भावी।**
**जीवसरीरो णेयो, भावी चिय जाणग-सरीरो॥344॥**

**अर्थ**–शास्त्र का ज्ञाता किन्तु वर्तमान में उपयोग से रहित जीव का भावी शरीर भावी ज्ञायक शरीर जानना चाहिए।

## भावी नो आगम द्रव्य

**पज्जत्थियेण णाणा-पज्जाय-लद्धीइ अहिमुह-जीवो।**
**आइरिय-परंपराए, भावी णोआगम-दव्वो दु॥345॥**

**अर्थ**–पर्यायार्थिक नय से नाना पर्याय की प्राप्ति के लिए अभिमुख जीव आचार्य परंपरा से भावी नोआगम द्रव्य है।

## तद्व्यतिरिक्त भेद

**तव्वदिरित्तो दुविहो, कम्म-णोकम्माणं च भेयादो।**
**णाणावरणादिगदं, पोग्गलदव्वकम्मं पढमो॥346॥**

**अर्थ**–कर्म व नोकर्म के भेद से तद्व्यतिरिक्त दो प्रकार का है। ज्ञानावरणादि गत पुद्गल द्रव्य कर्म, कर्म तद्व्यतिरिक्त नो आगम द्रव्य है।

## नोकर्म तद्व्यतिरिक्त

**आहारादिवग्गणा रूवुवचिदपोग्गलं दव्वं जाण।**
**देहत्तपरिणामस्स उच्छाहरहिदं णोकम्मो॥347॥**

**अर्थ**–देहत्व अर्थात् शरीरपना रूप परिणाम के लिए उत्साह रहित जो आहारादि वर्गणा रूप एकत्रित हुए पुद्गल द्रव्य हैं वह नोकर्म तद्व्यतिरिक्त नो आगम द्रव्य जानो।

## नोकर्म तद्व्यतिरिक्त भेद

**सो दुविहो भेयादो, लोगिग-लोगोत्तराण णादव्वो।**
**उहयो तिण्णिविहो अवि, सचित्तचित्तमिस्सभेयादु॥348॥**

**अर्थ**–वह लौकिक व लोकोत्तर के भेद से दो प्रकार का जानना चाहिए। वे दोनों भी सचित्त, अचित्त व मिश्र के भेद से तीन प्रकार के हैं।

## सचित्त-अचित्त व मिश्र

**जीवदव्वो सचित्तो, सव्वाचित्तो य चेयणविहीणो।**
**जीवपोग्गलाणं तह, संजोगेण मिस्सो णेयो॥349॥**

**अर्थ**–जीव द्रव्य सचित्त है। चेतन से विहीन सब कुछ अचित्त है तथा जीव व पुद्गल के संयोग से मिश्र जानना चाहिए।

## भाव निक्षेप

**दव्वस्स वट्टमाण-पज्जायकहणं भावणिक्खेवो।**
**पुज्जमाणो पूयगो गच्छंतो दु पहिगो जह वा॥350॥**

**अर्थ**–द्रव्य की वर्तमान पर्याय का कथन भाव निक्षेप है जैसे–पूजा करता हुआ पूजक अथवा चलता हुआ पथिक।

## भाव निक्षेप व भेद

**दुविह-भावणिक्खेवो, आगमणोआगमाण भेयादो।**
**जाणगो वट्टमाणे, आगमो तस्सुवजोगजुदो॥351॥**

**अर्थ**–आगम व नोआगम के भेद से भाव निक्षेप दो प्रकार का है। शास्त्र का जानकार व वर्तमान में उसके उपयोग से युक्त आगम भाव निक्षेप है।

**जीवण-पज्जाय-जुदो, गुणपरिणदप्पो णोआगमो वा।**
**जहा केवलणाणाइ-संजुत्तो भावरिहंतो दु॥352॥**

**अर्थ**–जीवन पर्याय से युक्त आत्मा या गुण परिणत आत्मा नोआगम भाव जीव है। जैसे केवलज्ञानादि से संयुक्त भाव अरिहंत।

**विज्जदि दव्वत्थिगम्मि, णामट्ठावणाभावणिक्खेवो।**
**पज्जत्थिग-णयम्मि य, भावणिक्खेवो विसेसेण॥353॥**

**अर्थ**–द्रव्यार्थिक नय में नाम, स्थापना व भाव निक्षेप और पर्यायार्थिक नय में भाव निक्षेप विशेष रूप से विद्यमान हैं।

# XI. अनुयोगद्वाराधिकार

## अनुयोग द्वार भेद

**पदत्था संविदेदुं, उवाओ चिय अणुजोगदारं अवि।**
**सडविहमट्ठविहं वा, अणेगविहं वि मुणेदव्वं॥354॥**

**अर्थ**–अनुयोग द्वार भी निश्चय से पदार्थों को जानने का उपाय है। वह छः, आठ या अनेक प्रकार का भी जानना चाहिए।

**णिद्देसो सामित्तं, साहणाहिकरणट्ठिदिविहाणाणि।**
**ताण सरूवं वोच्छे, भव्वाण कल्लाणत्थं हं।।355।।**

**अर्थ**–निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति व विधान। भव्यों के कल्याण के लिए मैं (आचार्य वसुनंदी मुनि) उनके स्वरूप को कहूँगा।

## निर्देशादि स्वरूप

**वत्थु-सरूव-कहणं च, णिद्देसो दु सामिस्स सामित्तं।**
**तस्सुप्पत्ति-कारणं, साहणं आहारहिकरणं।।356।।**

**अर्थ**–वस्तु के स्वरूप का कथन निर्देश है। वस्तु के स्वामी का कथन स्वामित्व है। उसकी उत्पत्ति में कारण साधन और उसका आधार अधिकरण है।

**कालमज्जादा ठिदी, वत्थुस्स भेया विहाणं तहा दु।**
**पुण्णेण वत्थुं णादु-मणुजोगदारं णादव्वं।।357।।**

**अर्थ**–काल की मर्यादा-स्थिति तथा वस्तु के भेद या प्रकार विधान है। पूर्ण रूप से वस्तु को जानने के लिए अनुयोग द्वार जानना चाहिए।

## सत् आदि स्वरूप

**सदो संखा य खेत्तं, फासणं यालो अंतरो भावो।**
**अप्पबहुत्तमणुजोग-दाराणि हिदत्थं जाणेज्ज॥358॥**

**अर्थ**–सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अंतर, भाव और अल्पबहुत्व हित के लिए ये अनुयोग द्वार जानने चाहिए।

**सदो वत्थु-अत्थित्तं, सदाभावो णेव असदुप्पादो।**
**दव्वो णेव णस्सदे, पज्जाया चिय परिणमंते॥359॥**

**अर्थ**–वस्तु का अस्तित्व सत् है। सद् का कभी अभाव नहीं होता और असत् का कभी उत्पाद नहीं होता। द्रव्य कभी भी नष्ट नहीं होता; पर्यायें ही परिणमन करती हैं।

**भेयाणं खलु गणिमं, वत्थुस्स संखा तह मुणेदव्वा।**
**खेत्तं सया वत्थुस्स, वट्टमाणणिवासट्ठाणं॥360॥**

**अर्थ**–वस्तु के भेदों की गणना निश्चय से संख्या जाननी चाहिए। वस्तु का वर्तमान निवास स्थान सदा क्षेत्र जानना चाहिए।

**तियालगोयरो होदि, फासणं तियालखेत्तं वत्थुस्स।**
**वत्थुट्ठिदि यालो वा, काल-मज्जादा णादव्वो॥361॥**

**अर्थ**–स्पर्शन त्रिकालगोचर होता है। वस्तु का त्रिकालक्षेत्र स्पर्श है। वस्तु की स्थिति या काल की मर्यादा काल जानना चाहिए।

**अंतरो विरहयालो, वत्थुस्स वट्टमाणदसा भावो।**
**हीणाहियत्त-कहणं, अप्पबहुत्त-मण्णवत्थूदु॥362॥**

**अर्थ**–विरहकाल को अंतर कहते हैं। वस्तु की वर्तमान दशा भाव है। अन्य वस्तुओं से हीनाधिकता का कथन अल्पबहुत्व है।

# XII. नयाधिकार

## नय व प्रमाण विषय

**लोए सव्व-वत्थूणि, हवंति अणंतधम्मसंजुत्ताणि।**
**एगाणेग-धम्मो दु, णयपमाणविसयो कमसो य॥363॥**

**अर्थ**–लोक में सभी वस्तुएँ अनंत धर्म से युक्त होती हैं। एक व अनेक धर्म क्रमशः नय व प्रमाण का विषय हैं।

## प्रमाण-नय लक्षण

**संपुण्णरूवेणं च, वत्थु-जाणग-णाणं खलु पमाणं।**
**अंसरूवेणं वत्थु-जाणग-णाणं णयो णेयो॥364॥**

**अर्थ**–संपूर्ण रूप से वस्तु को जानने वाला ज्ञान निश्चय से प्रमाण है और अंश रूप से वस्तु को जानने वाला ज्ञान नय जानना चाहिए।

## नय

**वाय-णादु-सोदाणं, अहिप्पायो णयो संविदिदव्वो।**
**णयो वक्खाणदे चिय, वत्थुस्स एगंसं णियमा॥365॥**

**अर्थ**–वक्ता, ज्ञाता या श्रोता का अभिप्राय नय जानना चाहिए। नय नियम से वस्तु के एक अंश को ही कहता है।

## द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक नय

**णयो मुक्खेण दुविहो, दव्वट्ठिओ परमट्ठियो णेयो।**
**दव्वो दव्वट्ठियस्स, पज्जाओ इयरस्स विसयो॥366॥**

**अर्थ**–मुख्य रूप से नय दो प्रकार का ही जानना चाहिए–द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। द्रव्य द्रव्यार्थिक नय का और पर्याय इतर अर्थात् पर्यायार्थिक नय का विषय है।

## द्रव्यार्थिक नय के दस भेद

**दव्वत्थिगो दसविहो, कम्मुपाहिणिरवेक्खाइ-भेयादो।**
**सगप्पसुद्धं करिदुं, दव्वत्थिग-णयो णादव्वो॥367॥**

**अर्थ**–कर्मोपाधि निरपेक्ष आदि के भेद से द्रव्यार्थिक नय दस प्रकार का है। स्वात्मा को शुद्ध करने के लिए द्रव्यार्थिक नय जानना चाहिए।

## कर्मोपाधिनिरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय

**विसयो हु सुद्धदव्वो, जस्स कम्मुपाहिणिरवेक्खसुद्धो दु।**
**गुणट्ठाण-विज्जमाण-जीवो जह सिद्धोव्व सुद्धो॥368॥**

**अर्थ**–जिसका विषय शुद्ध द्रव्य है वह कर्मोपाधिनिरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। जैसे गुणस्थान में विद्यमान जीव को सिद्ध के समान शुद्ध कहना।

## सत्ताग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय

**उप्पादव्वयगोणं किच्चा मेत्तं सत्तागाहगो दु।**
**सत्तागाहगसुद्धो, जहा दव्वो णिच्चो णेयो॥369॥**

**अर्थ**–उत्पाद और व्यय को गौण करके मात्र सत्ता को ग्रहण करने वाला निश्चय से सत्ता ग्राहक शुद्ध नय जानना चाहिए–जैसे द्रव्य नित्य है।

## भेद कल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय

**गुणिगुणादीसु अभेय-सीसणं भेयकप्पणाणिरवेक्खो।**
**जह दव्वो हु अभिण्णो, सगुणपज्जायसहावादो॥370॥**

**अर्थ**–गुण-गुणी आदि में अभेद कथन करना भेदकल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। जैसे स्वगुण-पर्याय-स्वभाव से द्रव्य अभिन्न है।

## कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय

**सकम्मासुद्धजीवो, कम्मुपाहिसावेक्खासुद्धस्स हु।**
**विसयो जह कम्मजणिद-कोहाइ-भाव-संजुदप्पा॥371॥**

**अर्थ**–कर्म सहित अशुद्ध जीव कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध नय का विषय है। जैसे–कर्मजनित क्रोधादि भाव से युक्त आत्मा।

## उत्पाद-व्यय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय

**सावेक्खासुद्धणयो, तस्स कहगो उप्पादव्वयादो।**
**जहेगसमये दव्वो, उप्पादव्वयधुवत्तजुदो॥372॥**

**अर्थ**–उत्पाद-व्यय की अपेक्षा से कथन करने वाला उसका सापेक्ष अशुद्ध नय अर्थात् उत्पाद व्यय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। जैसे–एक समय में ही द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से युक्त है।

## भेद कल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय

**भेयावेक्खा-कहगो, भेयकप्पणासावेक्खासुद्धो।**
**गुणि-गुणादीसुं जहा, अप्पस्स चिय णाणाइ-गुणा॥373॥**

**अर्थ**–गुण-गुणी आदि में भेद की अपेक्षा कथन करने वाला भेद कल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। जैसे आत्मा के ज्ञानादि गुण।

## अन्वय सापेक्ष द्रव्यार्थिक नय

**संपुण्णगुणपज्जाय-सहावा दव्वमिदं दव्वमिदं च।**
**कहेदि जो सो अण्णय-दव्वत्थिओ णयो णेयो हु॥374॥**

**अर्थ**–जो नय संपूर्ण गुण, पर्याय और स्वभाव को 'यह द्रव्य है, यह द्रव्य है' इस प्रकार कहता है, वह अन्वय सापेक्ष द्रव्यार्थिक नय जानना चाहिए।

## स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय

**सदव्वाइचउक्कादु, दव्वो अत्थि गाहगो चिय इत्थं।**
**सगदव्वाइगाहगो, दव्वत्थिगो णयो णेयो हु॥375॥**

**अर्थ**–स्वद्रव्यादि चतुष्क की अपेक्षा से द्रव्य अस्ति है। इस प्रकार ग्रहण करने वाला स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय जानना चाहिए।

## परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय

**दव्वो दु णत्थि इत्थं, गाहगो परदव्वाइचउक्कादु।**
**परदव्वाइगाहगो, दव्वत्थिगो णयो जाणेज्ज॥376॥**

**अर्थ**–परद्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा द्रव्य नहीं है, इस प्रकार ग्रहण करने वाला परद्रव्यादि ग्राहक द्रव्यार्थिक नय जानना चाहिए।

## परमभाव ग्राहक द्रव्यार्थिक नय

**गहदि अणुवयारेणं, दव्वस्स सहावं परमभावं च।**
**जो सो चिय परमभाव-गाहगे-दव्वत्थिगो णयो दु॥377॥**

**अर्थ**–जो द्रव्य के स्वभाव व परमभाव को अनुपचार से ग्रहण करता है वह निश्चय से परमभाव ग्राहक द्रव्यार्थिक नय है।

## सर्व भेद ग्राह्य

**दव्वत्थिगस्स भेया, कहंति सव्वा पुध पुध अवेक्खाइ।**
**सव्वा खलु गहणीया, सव्वहिदत्थं सण्णाणस्स॥378॥**

**अर्थ**–द्रव्यार्थिक के सभी भेद पृथक्-पृथक् अपेक्षा से कथन करते हैं। अतः सबके हित व सम्यक्ज्ञान के लिए सभी भेद ग्राह्य हैं।

## पर्यायार्थिक नय के छः भेद

**पज्जत्थिग-णयो जाण, छव्वियप्पो भव्वकल्लाणत्थं।**
**पज्जायणाणं विणा, अत्थणाणं होदि ण पुण्णं॥379॥**

**अर्थ**–भव्यों के कल्याण के लिए पर्यायार्थिक नय छः प्रकार का जानना चाहिए। पर्याय ज्ञान के बिना वस्तु का पूर्ण ज्ञान नहीं होता।

## अनादिनित्य पर्यायार्थिक नय

**णिच्चणाइ-पज्जाओ, होज्ज अणाइणिच्चणयस्स विसयो।**
**जह अकिट्टिमाणि-भवण-विमाण-चेइयचेइयाणि य॥380॥**

**अर्थ**–अनादिनित्य नय का विषय अनादि-नित्य पर्याय होती है। जैसे– अकृत्रिम भवन, विमान और अकृत्रिम चैत्य-चैत्यालय।

## सादि नित्य पर्यायार्थिक नय

**सादिणिच्चपज्जाओ, हवेदि विसयो सादिणिच्चणयस्स।**
**जह जीवस्स हु सस्सद-णिच्च-सादि-पज्जाय-सिद्धो॥381॥**

**अर्थ**–सादि नित्य पर्याय, सादि नित्य पर्यायार्थिक नय का विषय होती है। जैसे–जीव की सिद्ध पर्याय शाश्वत नित्य सादि है।

## अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय

**धुवत्तगोणं किच्चा, उप्पादव्वयं गहदे जो सो हु।**
**पडिसमयं पज्जाया, णस्संति जह अणिच्चसुद्धो॥382॥**

**अर्थ**–जो ध्रौव्य को गौण करके उत्पाद-व्यय को ग्रहण करता है वह निश्चय से अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय है। जैसे–पर्याय प्रतिसमय नष्ट होती हैं।

## अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय

**उप्पादव्वयधुवत्त-गाहगो हु एगसमयम्मि णेयो।**
**णयो अणिच्चासुद्धो, पज्जत्थिगो सण्णाणीहिं॥383॥**

**अर्थ**–एक समय में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यत्व को ग्रहण करने वाला सम्यग्ज्ञानियों के द्वारा अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय जानना चाहिए।

## अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय

**सकम्मेसु कम्मरहिद-सुद्धपज्जायस्स णयो कहणं च।**
**जह सिद्धोव्व संसारि-सुद्धो णयो अणिच्चसुद्धो॥384॥**

**अर्थ**–कर्म सहित जीवों में कर्म रहित शुद्ध पर्याय का कथन करना (कर्मोपाधि सापेक्ष) अनित्य-शुद्ध पर्यायार्थिक नय है। जैसे–संसारी जीवों की पर्याय सिद्ध के समान शुद्ध है।

## अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय

**जस्स णयस्स विसयो हु, पज्जाओ अणिच्चो तह असुद्धो।**
**णयो अणिच्चासुद्धो, जीवाणं सो मुणेदव्वो॥385॥**

**अर्थ**–जिस नय का विषय जीवों की अनित्य तथा अशुद्ध पर्याय है वह जिनागम से (कर्मोपाधि सापेक्ष) अनित्य अशुद्ध नय जानना चाहिए।

**कम्मजणिद-णारगाइ-विहाव-पज्जाया संसारीणं।**
**पोग्गलस्स खंधा जह, णो विहावा अण्णदव्वाण।।386।।**

**अर्थ**–जैसे–संसारी जीवों की कर्म जनित नारक आदि विभाव पर्याय व पुद्गल की स्कंध पर्याय विभाव पर्याय है। अन्य द्रव्यों (धर्म, अधर्म, आकाश और काल) की कभी विभाव पर्यायें नहीं होती।

## *नैगमादि नय*

**णेगमो संगहो तह, ववहारो दव्वत्थिग-णयो जाण।**
**पज्जत्थिगो चिय णयो, उजुसुत्तणयादी चत्तारि।।387।।**

**अर्थ**–नैगम, संग्रह और व्यवहार द्रव्यार्थिक नय जानो तथा ऋजुसूत्र आदि चार नय पर्यायार्थिक नय जानने चाहिए।

## *नैगम नय*

**णेगमो तह संकप्प-मेत्तगाहगो णाणावियप्पाण।**
**णेगं गच्छदि णिगमो, सो वियप्पो तं गहदि णयो।।388।।**

**अर्थ**–संकल्प मात्र को ग्रहण करने वाला या नाना विकल्पों को ग्रहण करने वाला नैगम नय है। जो एक को प्राप्त नहीं होता वह निगम या विकल्प है। वह विकल्प को ग्रहण करता है इसलिए नैगम नय है।

**पुच्छणे कज्जविसये, रहयारं केण णरेण उत्तरदि।**
**आसणणिम्माणेदुं, संकप्पसंजुत्तं चिय सो॥389॥**
**णिम्माणेमि आसणं, जदवि सो गच्छदि कट्ठमाणेदुं।**
**जाव सिरदे तं ताव, सव्ववियप्पा गहेदि णयो॥390॥**

**अर्थ**–आसन निर्माण में संकल्प से युक्त बढ़ई से किसी मनुष्य के द्वारा उसके कार्य के विषय में पूछने पर, वह उत्तर देता है कि ''मैं आसन बना रहा हूँ।'' यद्यपि वह लकड़ी लेने जा रहा है। जब तक वह उसका निर्माण करता है तब तक यह नय सर्व विकल्पों को ग्रहण करता है।

## *नैगम नय के भेद*

**णेगमो णयो तिविहो, भूद-भावि-वट्टमाण-भेयादो।**
**छव्विहो वि णादव्वो, कइवयाइरियाणुसारेण॥391॥**

**अर्थ**–भूत, भावी और वर्तमान के भेद से नैगम नय तीन प्रकार का है। किन्हीं आचार्यों के अनुसार छः प्रकार का भी जानना चाहिए।

## *भूत नैगम नय*

**आरोवणं अदीदे, वट्टमाणस्स य भूदणेगमो हु।**
**जह अज्जं दीवुच्छव-दिवसे मोक्खं गदो वीरो॥392॥**

**अर्थ**–अतीत में वर्तमान का आरोपण करना भूत नैगम नय है। जैसे आज दीपोत्सव-दीपावली के दिन भगवान् महावीर स्वामी मोक्ष गए।

## भावी नैगम नय

**णिप्फण्णोव्व सीसणं, दु अणिप्फण्ण-अणागद-पदत्थस्स।**
**भाविणयो जह अरिहे, सिद्धस्स अपत्थे पत्थस्स॥393॥**

**अर्थ**–अनिष्पन्न अनागत पदार्थ का कथन निष्पन्न के समान करना भावी नैगम नय है। जैसे अरिहंत में सिद्ध का और अप्रस्थ में प्रस्थ का कथन भावी नैगम नय है।

## वर्तमान नैगम नय

**णिप्फण्णोव्व पुण्णोव्व, कहणं पारद्धापुण्णकिरियाइ।**
**वट्टमाणो णेगमो, जहा ओदणं पचामि अहं॥394॥**

**अर्थ**–प्रारम्भ की गई अपूर्ण क्रिया का कथन निष्पन्न या पूर्ण के समान करना वर्तमान नैगम नय है। जैसे–मैं भात पकाता हूँ।

## नैगम नय के अन्य भेद

**वट्टमाणम्मि अदीद-कहणं अदीदे य वट्टमाणस्स।**
**भाविस्स वट्टमाणे, वट्टमाणस्स चिय भाविम्मि॥395॥**
**अणागदस्स कहणं च, अदीदे अणागदम्मि अदीदस्स।**
**इत्थं छव्वियप्पो वि, णेगमो णयो मुणेदव्वो॥396॥**

**अर्थ**–वर्तमान में अतीत का, अतीत में वर्तमान का, वर्तमान में भविष्य का, भविष्य में वर्तमान का, अतीत में अनागत का और अनागत में अतीत का कथन करना; इस प्रकार नैगम नय छः प्रकार का भी जानना चाहिए।

## संग्रह नय व भेद

**सजादि-अविरोहेणं, संपुण्ण-पदत्था गहदे जो सो।**
**संगहो णयो दुविहो, सामण्णो विसेसो तह सो॥397॥**

**अर्थ**–स्वजाति के अविरोधपूर्वक संपूर्ण पदार्थों को जो ग्रहण करता है वह संग्रह नय दो प्रकार का है–सामान्य तथा विशेष।

## सामान्य संग्रह नय

**परोप्पराविरोहेण, अणेगजादिणिचअ-एगवयणेण।**
**कहणं खलु सामण्णो, संगहो जह सव्वदव्वाणि॥398॥**

**अर्थ**–परस्पर अविरोध रूप से अनेक जाति के समूह का कथन एकवचन रूप से करना सामान्य संग्रह नय है। जैसे–सर्व द्रव्य परस्पर में अविरोधी हैं।

## विशेष संग्रह नय

**परोप्पराविरोहेण, एगजादिसमूह-एगवयणेण।**
**गाहगो विसेसो जह, सव्वजीवा चेयणत्तादु॥399॥**

**अर्थ**–परस्पर अविरोध रूप से एक जाति के समूह को एक वचन रूप से ग्रहण करने वाला विशेष संग्रह नय है। जैसे–चेतनत्व होने से सभी जीव।

## व्यवहार नय व भेद

**संगहगहीदत्थेसु, भेयकारगो हु णयो ववहारो।**
**सामण्ण-विसेसाणं, भेयादु दुविहो णेयो सो।।400।।**

**अर्थ**–संग्रह नय से ग्रहण किए पदार्थों में भेद करने वाला व्यवहार नय जानना चाहिए। वह सामान्य और विशेष के भेद से दो प्रकार का है।

## सामान्य व्यवहार नय

**जो सो करेदि भेयं, सामण्णसंगहगहीदत्थेसुं।**
**सामण्णववहारो दु, जीवो अजीवो जह दव्वो।।401।।**

**अर्थ**–जो सामान्य संग्रह नय के द्वारा ग्रहण किए गए पदार्थों में भेद करता है वह सामान्य व्यवहार नय है। जैसे–जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य।

## विशेष व्यवहार नय

**जो सो करेदि भेयं, विसेससंगहसंगहीदत्थेसु।**
**विसेसववहारो जह, संसारी मुत्तो य जीवो।।402।।**

**अर्थ**–जो विशेष संग्रह नय के द्वारा ग्रहण किए गए पदार्थों में भेद करता है वह विशेष व्यवहार नय है। जैसे–संसारी जीव और मुक्त जीव।

## ऋजुसूत्र नय व भेद

**सरलं सुत्तदि कहदे, जो सो उजुसुत्तो संविदिदव्वो।**
**बेवियप्पो खलु सुहुम-थूलाणं तहा भेयादो।।403।।**

**अर्थ**–जो सरल को सूत्रित करता है, सरल को कहता है वह ऋजुसूत्र नय जानना चाहिए। वह सूक्ष्म और स्थूल के भेद से दो प्रकार का है।

## सूक्ष्म ऋजुसूत्र नय

**एगसमयवट्टिं जो, करदि विसयं पज्जायं सो जाण।**
**सुहुमउजुसुत्तणयो हु, जह सद्दादी सव्व-खणियो।।404।।**

**अर्थ**–जो एक समयवर्ती पर्याय को विषय करता है वह सूक्ष्म ऋजुसूत्र नय जानना चाहिए। जैसे–शब्द आदि सर्व क्षणिक हैं।

## स्थूल ऋजुसूत्र नय

**अणेगसमयवट्टिं हु, पज्जायं गहदे जो सो थूलो।**
**जहा सगयालवट्ठिद-णर-सुर-तिरियाइ-पज्जाया।।405।।**

**अर्थ**–जो अनेक समयवर्ती पर्याय को ग्रहण करता है वह स्थूल ऋजुसूत्र नय है। जैसे स्वकाल तक अवस्थित नर, सुर और तिर्यंचादि की पर्याय।

## शब्द नय

**संखा-कारगुवग्गह-लिंगादीण वभियारणिवट्टगो।**
**सद्दणयो चिय जो सो, संविदिदव्वो सण्णाणस्स।।406।।**

**अर्थ**–जो संख्या, कारक, उपग्रह और लिंग आदि के व्यभिचार का निवर्तक है, सम्यग्ज्ञान के लिए वह शब्द-नय जानना चाहिए।

## लिंगव्यभिचार

**एगट्ठं गहदि किण्णु, लिंगदोसरहिदं जह सक्किंदो।**
**पुरंदराखंडलो य, सव्वा इंदवायगसद्दा।।407।।**

**अर्थ**–शब्द नय लिंग दोष से रहित पर्यायवाची ग्रहण करता है। जैसे शक्र, इंद्र, पुरंदर, आखंडल सभी इंद्रवाची शब्दों को यह ग्रहण करता है क्योंकि इनमें लिंग भेद नहीं है।

**दारो भज्जा कलत्त-मेगट्ठो किण्णु वक्के णयो णो।**
**संगच्छेदि एगट्ठरूवेणं लिंगभेदादो।।408।।**

**अर्थ**–दार, भार्या और कलत्र ये एकार्थवाची हैं किन्तु लिंग भेद होने से वाक्य में यह नय इन्हें एकार्थवाची रूप से स्वीकार नहीं करता।

**णाणं विज्जा सत्थं, कुंतो गहदे सद्दो णयो णेव।**
**लिंगवभियारादो हु, जम्हा दोस-णिवट्टगो सो॥409॥**

**अर्थ**–ज्ञान विद्या है, भाला शस्त्र है किन्तु यहाँ लिंग व्यभिचार होने से शब्दनय इन्हें ग्रहण नहीं करता क्योंकि वह दोष निवर्तक है।

## संख्या व्यभिचार

**एगवयणट्ठाणम्मि, अण्णवयण-पओगणं सद्द-णयो।**
**संगच्छदि कया वि णो, तम्मि संखावभियारादो॥410॥**

**अर्थ**–एकवचन के स्थान पर अन्य वचनों का प्रयोग करना संख्या व्यभिचार है। संख्या व्यभिचार होने से शब्द नय उसे कभी स्वीकार नहीं करता।

**अंबा अरण्णं जहा, हत्थो पंचतारिगा तहा किण्णु।**
**सद्दणयो णेव गहदि, संखावभियारादो तहा॥411॥**

**अर्थ**–जैसे आम के वन (यहाँ आम बहुवचनांत व अरण्य एकवचनांत है।) तथा हस्त पंचतारका (यहाँ हस्त एकवचनांत व पंचतारिका बहुवचनांत है) किन्तु संख्याव्यभिचार होने से शब्द इन्हें ग्रहण नहीं करता।

## काल व्यभिचार

**भूदादि-पओगणं च, अणागदाइयालट्ठाणम्मि चिय।**
**कालवभियारो जहा, भाविकज्जं आसी जाणेज्ज।।412।।**

**अर्थ**–अनागतादि काल के स्थान पर भूतादि का प्रयोग करना कालव्यभिचार जानना चाहिए। जैसे–होने वाला कार्य हो चुका है।

## साधन व्यभिचार

**एयकारगट्ठाणे, अण्णकारगपओगणं जाणेज्ज।**
**कारगवभियारो वा, साहणो णयरं वसेदि जह।।413।।**

**अर्थ**–एक कारक के स्थान पर अन्य कारकों का प्रयोग करना कारक या साधन व्यभिचार जानना चाहिए। जैसे वह गाँव में रहता है। सप्तमी के स्थान पर द्वितीया का प्रयोग किया है अतः साधन व्यभिचार है।

## पुरुष व्यभिचार

**कस्स वि पुरिसट्ठाणे, अण्णपुरिसपओगमं णादव्वो।**
**हं रहेण गच्छसि जह, वा सो गच्छामि वभियारो।।414।।**

**अर्थ**–किसी भी पुरुष के स्थान पर अन्य पुरुष का प्रयोग करना पुरुष व्यभिचार जानना चाहिए। जैसे–मैं रथ से जाता है या वह आता हूँ।

## उपग्रह व्यभिचार

**अप्पपदस्स ठाणम्मि, परपदपओगणं अहवा इयरं।**
**उवग्गहवभियारो हु, पउत्तो सक्किद-भासाए।।415।।**

**अर्थ**–आत्मने पद के स्थान पर परस्मै पद का प्रयोग करना अथवा इतर अर्थात् परस्मै पद के स्थान पर आत्मने पद का प्रयोग करना उपग्रह व्यभिचार है। वह संस्कृत भाषा में प्रयुक्त होता है।

**जह पद-कव्व-वक्केसु, देक्खिज्जंति लिंगाइ-वभियारा।**
**सद्दणयो कयावि णो, गहदि दोसं वभियारं वा।।416।।**

**अर्थ**–जहाँ पद, काव्य और वाक्यों में लिंगादि व्यभिचार देखे जाते हैं उन दोषों या व्यभिचारों को शब्द नय कभी भी ग्रहण नहीं करता।

## समभिरूढ़ नय

**सद्दाणमणेगत्था, किण्णु पसंगाणुसारेण गहेज्ज।**
**समभिरूढो णाणत्थमुज्झित्ता गहदि रूढत्थं।।417।।**

**अर्थ**–शब्दों के अनेक अर्थ हैं किन्तु प्रसंगानुसार उन्हें ग्रहण करना चाहिए। जो नाना अर्थों का त्यागकर रूढ़ि अर्थ को ग्रहण करता है वह समभिरूढ़ नय है।

**जह मंडूगो सीहो, णारायणो चंदक्किंद-वाऊ।**
**वाणरहयणेगत्था, हरिस्स णारायणं गहदे।।418।।**
**उसहो इंदिय-भूमी, सलिलं किरणो णेत्तं तह सग्गो।**
**गवस्स दु अणेगत्था, रूढीए गवं गहदि णयो।।419।।**

**अर्थ**–जैसे हरि शब्द के मेंढक, सिंह, नारायण, चंद्रमा, सूर्य, इंद्र, वायु, वानर और अश्व आदि अनेक अर्थ हैं किन्तु यह नय रूढ़ि से नारायण अर्थ को ग्रहण करता है। उसी प्रकार जैसे–गाय शब्द के वृषभ, इंद्रिय, भूमि, जल, किरण, नेत्र और स्वर्गादि अनेक अर्थ होते हैं किंतु यह नय रूढ़ि से 'गव' या गौ अर्थ को ग्रहण करता है।

## एवंभूत नय

**जो पुरिसो जं किरियं, कुणदि याले जम्मि एवंभूदो।**
**तस्सिं पुरिसे ताइ, किरियारोवगो णादव्वो।।420।।**

**अर्थ**–जो पुरुष जिस काल में जो क्रिया करता है उस पुरुष में उस क्रिया का आरोपण करने वाला एवंभूत नय जानना चाहिए।

**जह अच्चंत-अच्चगो, धावंत-धावगो वदंत-वायो।**
**एवंसद्द-अत्थो दु, एरिसो भूदस्स परिणदो।।421।।**

**अर्थ**–एवं शब्द का अर्थ 'ऐसा है' 'भूत' शब्द का अर्थ है 'परिणत' जैसे अर्चना करता हुआ अर्चक, दौड़ता हुआ धावक, बोलता हुआ वक्ता कहलाता है।

## द्रव्य-भाव नय

**णयो दुविहो वि णेयो, भेयादो दव्वभाव-णयाणं च।**
**दव्वं गहेदि जो सो, दव्वो तहा भावं भावो॥422॥**

**अर्थ**–द्रव्य और भाव नय के भेद से नय दो प्रकार का जानना चाहिए। जो द्रव्य को ग्रहण करता है वह द्रव्य नय और जो भाव को ग्रहण करता है वह भाव नय है।

## उपनय व भेद

**णयाणं जे समीवा, ते उवणया तिविहो सब्भूदो य।**
**असब्भूदो उवचरिद-असब्भूद-ववहारणयो य॥423॥**

**अर्थ**–जो नयों के समीप हैं वे उपनय हैं। उपनय तीन प्रकार का है– सद्भूत व्यवहार उपनय, असद्भूत व्यवहार उपनय और उपचरित असद्भूत व्यवहार उपनय।

**उवणया कुव्वंति अवि, कज्जं मूलणयोव्व किण्णु कया वि।**
**उवणयो णेव होज्जा, मूलणयो हु जिणसासणम्मि॥424॥**

**अर्थ**–उपनय भी मूल नय के समान कार्य करते हैं किन्तु जिनशासन में उपनय कभी भी मूलनय नहीं होते।

## सद्भूत व्यवहार उपनय व भेद

**अभेदवत्थूसु कडुअ, भेयं वदेदि सब्भूदो जो सो।**
**ववहारो दुवियप्पो, सुद्धासुद्धाण भेयादो।।425।।**

**अर्थ**–जो अभेद वस्तुओं में भेद करके कहता है वह सद्भूत व्यवहार उपनय है। वह शुद्ध व अशुद्ध के भेद से दो प्रकार का है।

## शुद्ध सद्भूत व्यवहार उपनय

**सुद्धगुणिगुणपज्जाय-पज्जायीसु भेय-कहगो सुद्धो।**
**सब्भूदववहारो य, सिद्धजीवो पज्जायो जह।।426।।**

**अर्थ**–शुद्ध गुण-गुणी व शुद्ध पर्याय-पर्यायी में भेद कथन करने वाला शुद्ध सद्भूत व्यवहार उपनय है। जैसे–सिद्ध जीव और सिद्ध पर्याय।

## अशुद्ध सद्भूत व्यवहार उपनय

**भेय-कहगो हु असुद्ध-गुणिगुणपज्जायपज्जायीसुं च।**
**असुद्धसब्भूदो जह, मदिणाणं तहा मदिणाणी।।427।।**

**अर्थ**–अशुद्ध गुण-गुणी और अशुद्ध पर्याय-पर्यायी में भेद कथन करने वाला अशुद्ध सद्भूत व्यवहार उपनय है जैसे मतिज्ञान तथा मतिज्ञानी।

## असद्भूत व्यवहार उपनय व भेद

**असब्भूदववहारो, सजादि-विजादि-मिस्साण भेयादु।**
**तिवियप्पो णादव्वो, जिणवरकहिदागमणेणं हु॥428॥**

**अर्थ**—जिनवर द्वारा कहे गए आगम के अनुसार असद्भूत व्यवहार उपनय स्वजाति, विजाति और मिश्र के भेद से तीन प्रकार का जानना चाहिए।

## स्वजाति असद्भूत व्यवहार उपनय

**सजादि-दव्वादीसुं, ताणमेव आरोवगो सजादी।**
**असब्भूद-ववहारो, जह बहुपदेसी परमाणू॥429॥**

**अर्थ**—स्वजाति द्रव्यादि में उनका ही आरोपण करने वाला स्वजाति असद्भूत व्यवहार उपनय है। जैसे—परमाणु को बहुप्रदेशी कहना।

## विजाति असद्भूत व्यवहार उपनय

**विजादि-दव्वादीसुं, ताणमेव आरोवगो विजादी।**
**जह मदिणाणं मुत्तं, मुत्तकम्मजणिदादो जाण॥430॥**

**अर्थ**—विजाति द्रव्यादिकों में उनका ही आरोपण करने वाला विजात्यसद्भूत व्यवहार उपनय जानना चाहिए। जैसे मूर्त्त कर्म से उत्पन्न होने से मतिज्ञान मूर्तिक है।

## स्वजाति विजातीय असद्भूत व्यवहार उपनय

**परिणदिविसेसकहगो, जीवपोग्गलसंजोगेण मिस्सो।**
**णेया जीवाजीवा, णाणं जह णाणविसयादो।।431।।**

**अर्थ**–जीव-पुद्गल के संयोग से परिणति विशेष को कहने वाला मिश्र अर्थात् स्वजातिविजातीय असद्भूत व्यवहार उपनय है। जैसे–ज्ञान का विषय होने से ज्ञेय जीव व अजीव ज्ञान हैं।

## उपचरित असद्भूत व्यवहार उपनय व भेद

**उवयारादो कुव्वदि, उवयारं जो सो अवि उवचरिदो।**
**असब्भूदो तिविहो दु, सजादी विजादी मिस्सो य।।432।।**

**अर्थ**–जो उपचार से भी उपचार करता है वह उपचरित असद्भूत व्यवहार उपनय है। वह तीन प्रकार का है–स्वजाति, विजाति तथा मिश्र।

## सचित्त उपचरित असद्भूत व्यवहार उपनय

**सजादिदव्वेसु कुणदि, उवयारादु उवयारं सचित्तो।**
**जह मम सामी सिस्सो, सेवगो गुरू य इच्चादी।।433।।**

**अर्थ**–जो स्वजाति द्रव्यों में उपचार से भी उपचार करता है वह स्वजाति उपचरित असद्भूत व्यवहार उपनय है। जैसे–मेरे स्वामी, शिष्य, सेवक व गुरु इत्यादि।

## अचित्त उपचरित असद्भूत व्यवहार उपनय

**उवयारादो विजादि-दव्वेसु सगसामित्तं वददि जो।**
**अचित्तासब्भूदो हु, जह आभूसणं कण्णाए॥434॥**

**अर्थ**–जो विजाति द्रव्यों में उपचार से स्व स्वामित्व को कहता है वह विजाति उपचरित असद्भूत व्यवहार उपनय है। जैसे–कन्या का आभूषण।

## सचित्ताचित्त उपचरित असद्भूत व्यवहार उपनय

**उवयारादो वददे, ससामित्तं सजादिविजादसु जो।**
**मिस्सासब्भूदो सो, ववहारणयो मुणेदव्वो॥435॥**
**जह सुसज्जिदा कण्णा, अलंकाराभूसिदा गय-अस्सा।**
**देवविमाणाणि तहा, रायस्स रज्जं दुग्गादी॥436॥**

**अर्थ**–जो सचित्त-अचित्त द्रव्यों में उपचार से स्वस्वामित्व का कथन करता है वह मिश्र अर्थात् स्वजाति-विजाति-उपचरित-असद्भूत व्यवहार उपनय जानना चाहए। जैसे–सुसज्जित कन्या, अलंकार से भूषित हाथी, अश्व, देव विमान, राजा का राज्य और दुर्गादि।

# XIII. अध्यात्म नयाधिकार

## अध्यात्म नय भेद

**अज्झप्प-गंथेसुं वि, णयो बेविहो भणिदो पण्णेहिं।**
**णिच्छयो य ववहारो, कज्जं कारणं ते कमसो।।437।।**

**अर्थ**–प्रज्ञजनों के द्वारा अध्यात्म ग्रंथों में नय दो प्रकार के भी जानने चाहिए–निश्चय और व्यवहार। वे क्रमशः कार्य और कारण हैं।

## निश्चय नय के भेद एवं स्वरूप

**णिच्छयस्स बेभेया, सुद्धो असुद्धो णयो णादव्वो।**
**वत्थुं गहदि णिच्छयो, अभेद-अणुवयरिदरूवेण।।438।।**

**अर्थ**–निश्चय नय के दो भेद हैं–शुद्ध निश्चय नय और अशुद्ध निश्चय नय। जो अभेद व अनुपचार से वस्तु को ग्रहण करता है वह अशुद्ध निश्चय नय जानना चाहिए।

## शुद्ध निश्चय नय

**दव्वसुद्धसत्तीए, दव्वं गहदे सुद्धावेक्खाए।**
**जो सो सुद्धणयो जह, सव्वेसुद्धा हु सुद्धणया।।439।।**

**अर्थ**–जो द्रव्य की शुद्ध शक्ति या शुद्धापेक्षा से द्रव्य को ग्रहण करता है वह शुद्ध नय है। जैसे–शुद्धनय से सब शुद्ध हैं।

## अशुद्ध निश्चय नय

**असुद्धदव्वं गहेदि, अभेद-अणुवयरिदरूवेणं तह।**
**जो सो संविदिदव्वो, असुद्धणिच्छयणयो णियमा।।440।।**

**अर्थ**–जो अभेद तथा अनुपचरित रूप से अशुद्ध द्रव्य को ग्रहण करता है वह नियम से अशुद्ध निश्चय नय जानना चाहिए।

## शुद्ध व अशुद्ध निश्चय नय

**असुद्धगुणगुणी गहदि, अभेयेण असुद्धो मदिणाणी य।**
**सुद्धगुणगुणी सुद्धो, णेयो जहा केवलणाणी।।441।।**

**अर्थ**–जो अभेद रूप से अशुद्ध गुण व गुणी को ग्रहण करता है वह अशुद्ध निश्चय नय है जैसे–मतिज्ञानी। जो अभेद रूप से शुद्ध गुण-गुणी को ग्रहण करता है वह शुद्ध निश्चय नय जानना चाहिए जैसे–केवलज्ञानी।

## व्यवहार नय व भेद

**अभेदवत्थुम्मि कडुअ, भेयं गहदे जो सो ववहारो।**
**बेविहो मुणेदव्वो, सब्भूदो तह असब्भूदो।।442।।**

**अर्थ**–जो अभेद वस्तु में भेद करके ग्रहण करता है वह व्यवहार नय है। वह दो प्रकार का जानना चाहिए–सद्भूत व असद्भूत।

## सद्भूत व असद्भूत व्यवहार नय के भेद

**दोण्णि अवि बेवियप्पो, उवचरिदाणुवचरिदाण भेयादु।**
**णयणाणं आवसियं, तच्चं बोहिदुं जाणिदुं च।।443।।**

**अर्थ**–उपचरित व अनुपचरित के भेद से वे दोनों भी दो प्रकार के हैं। तत्त्व को समझने और जानने के लिए नय का ज्ञान आवश्यक है।

**असुद्धगुणगुणीसुं च, भेयकहगो उवचरिदसब्भूदो।**
**जो सो णादव्वो जह, जीवस्स मदिणाणाइ-गुणा।।444।।**

**अर्थ**–जो अशुद्ध गुण व गुणी में भेद का कथन करने वाला है वह उपचरित सद्भूत व्यवहार नय जानना चाहिए। जैसे–जीव के मतिज्ञानादि गुण।

**अणुवचरिद-सब्भूदो, भेय-कहगो सुद्धगुणगुणीसुं च।**
**केवलणाणाइ-गुणा, जहा जीवस्स मुणेदव्वो।।445।।**

**अर्थ**–शुद्ध गुण, गुणी में भेद का कथन करने वाला अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय जानना चाहिए। जैसे–जीव के केवलज्ञानादि गुण।

**संसलेसरहिदभिण्ण-वत्थूण संबंधगाहगो जाण।**
**उवचरिदासब्भूदो, जह रायस्स विहवं रज्जं।।446।।**

**अर्थ**–संश्लेष रहित भिन्न वस्तुओं के संबंध को ग्रहण करने वाला उपचरित असद्भूत व्यवहार नय जानना चाहिए। जैसे–राजा का वैभव, राजा का राज्य आदि।

**परोप्परे संसलेससहिदवत्थूण संबंध-गाहगो।**
**जह जीवस्स सरीरं, अणुवचरिदासब्भूद-णयो।।447।।**

**अर्थ**–संश्लेष सहित वस्तुओं का परस्पर में संबंध ग्रहण करने वाला अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय है। जैसे–जीव का शरीर।

## निरपेक्ष व सापेक्ष नय

**मिच्छेकंतसमूहो, मिच्छेव होदि णियमेण सव्वत्थ।**
**णिरवेक्खणया मिच्छा, सावेक्खा सण्णाण-हेदू।।448।।**

**अर्थ**–नियम से मिथ्या एकांतों का समूह सर्वत्र मिथ्या ही होता है। निरपेक्ष नय मिथ्या और सापेक्ष नय सम्यग्ज्ञान का हेतु है।

# XIV. दुर्नयाधिकार

## दुर्नय

**णयो होदि असमत्थो, वक्खाणेदुं दव्वसरूवं जो।**
**कुवयण-खावगो वा दु, एगंतस्स दुण्णयो जाण।।449।।**

**अर्थ**–जो नय द्रव्य के स्वरूप को कहने में असमर्थ है, एकांत या कुवचनों का ख्यापक है, उसे दुर्नय जानो।

## मिथ्या नय

**जावइय-मिच्छाणया, तावइय-दुण्णया जाण लोयम्मि।**
**संसारवड्ढगा ते, सिच्छा भवदुक्ख-कारणं च।।450।।**

**अर्थ**–लोक में जितने मिथ्या नय हैं उतने दुर्नय जानने चाहिए। वे संसार-वर्द्धक, स्वेच्छाचारी और भवदु:ख के कारण हैं।

**संजमविहीण-साहू, गंधहीण-पुप्फं जलहीण-णई।**
**संकराइ-दोस-जुदो, अण्णाणं व कुणयो जह तह।।451।।**

**अर्थ**–जैसे संयम से हीन साधु, गंध से हीन पुष्प, जल से हीन नदी होती है वैसे ही संकरादि दोष से युक्त अज्ञान के समान कुनय हैं।

## एकांत नय मोक्षमार्ग पोषक नहीं

**सव्ववयणाणि मिच्छा, हवंति संकराइ-दोस-दूसिदाणि।**
**मिच्छाएगंतणयो, णेव पोसगो सिवमग्गस्स॥452॥**

**अर्थ**–संकर आदि दोष से दूषित सर्व वचन मिथ्या होते हैं। मिथ्या एकांत नय मोक्षमार्ग का पोषक नहीं होता।

## आठ दोष

**संकर-विरोह-वदिगर-वइयहिकरणा अणवत्था तहा हु।**
**असंभव-अपडिपत्ती, संसयो अट्ठविहो दोसो॥453॥**

**अर्थ**–ये दोष आठ प्रकार के हैं–संकर, विरोध, व्यतिकर, वैयधिकरण, अनवस्था, असंभव, अप्रतिपत्ति और संशय।

## संकर दोष

**सव्ववत्थूण मिलित्तु, संकरदोसो एगरूवहवणं।**
**सण्णाणी णियमेणं, संकरदोसमुज्झिय वदंति॥454॥**
**जह घड-पड-सज्जासण-भवण-वाहण-महि-गिरि-कंदरासुं।**
**देव-णर-णेरइय-वसु-सव्वेसु एयत्तपसंगो॥455॥ –जुगवं**

**अर्थ**–सभी वस्तुओं का मिलकर एक रूप होना संकर दोष है। सम्यक् ज्ञानी नियम से संकर दोष को त्यागकर बोलते हैं। जैसे–घट, पट, शैय्यासन, भवन, वाहन, पृथ्वी, पर्वत, कंदरा, देव, मनुष्य, नारकी व पशु सभी में एकत्व का प्रसंग आता है।

## विरोध दोष

**विरोहदोसो णेयो, मणणं अचेयणं चेयणस्स तह।**
**अचेयणस्स चेयणं, जह पोग्गलम्मि चेयणत्तं।।456।।**

**अर्थ**–चेतन को अचेतन तथा अचेतन को चेतन मानना विरोध दोष जानना चाहिए। जैसे–पुद्गल में चेतनत्व।

## व्यतिकर दोष

**जेण सहावेणं चिय, सामण्णं तेण विसेसं वत्थुं।**
**जेण विसेसं तेणं, सामण्णं वदियरो दोसो।।457।।**

**अर्थ**–वस्तु जिस स्वभाव से सामान्य है, उससे विशेष व जिससे विशेष है, उसी से सामान्य मानना व्यतिकर दोष है।

## वैयधिकरण दोष

**वत्थुसदरूवं जेण, सरूवादिणा तेण असदरूवं।**
**वइयहिकरण-दोसो दु, णिद्दिट्ठो जिणवरिंदेहिं।।458।।**

**अर्थ**–जिस स्वरूपादि वस्तु सत् रूप है, उसी स्वरूपादि से असत् रूप मानना वैयधिकरण दोष है, ऐसा जिनवरेंद्र के द्वारा निर्दिष्ट किया गया है

## अनवस्था दोष

**संददीइ कारणस्स, अभावो णेव दु उवकसदे जत्थ।**
**एयकारणं विदियो, अणंतंतं अणवत्था सो।।459।।**

**अर्थ**–जहाँ संतति के कारण का अभाव प्राप्त नहीं होता। एक का कारण दूसरा इस प्रकार अनंत तक अनवस्था दोष है।

**अस्स लोयस्स कत्तू, जहा ईसरोत्थि तदा को पहुस्स।**
**तस्स को वि कत्तू तो, तस्स कत्तुणो य कत्तू को।।460।।**
**इत्थं हु मण्णदे जो, सो अणवत्थादोसजुदो णेयो।**
**तच्चणाणस्स आगम-विदूहि दोसो उज्झिदव्वो।।461।।**

**अर्थ**–जैसे–इस लोक का कर्ता ईश्वर है तब उन ईश्वर का कर्ता कौन होगा। पुनः उसका भी कोई कर्ता होगा तो उस कर्ता का कौन कर्त्ता होगा। इस प्रकार जो मानता है वह अनवस्था दोष से युक्त जानना चाहिए। तत्त्वज्ञान के लिए आगमविदों के द्वारा यह दोष त्यागा जाना चाहिए।

## संशय दोष

**जं अणिच्छिदं णाणं, विरुद्ध णेग-कोडि-फासिदं जाण।**
**तं संसयदोसजुदं, उज्झेज्जा चिय सण्णाणस्स।।462।।**

**अर्थ**–विरुद्ध अनेक कोटि संस्पर्शित जो अनिश्चित ज्ञान है, वह संशय दोष से युक्त है। सम्यग्ज्ञान के लिए उसे छोड़ना ही चाहिए।

## अभाव दोष

**पडिपत्ति-अभावादो, अभाव-णिच्छयो अप्पडिपत्ती य।**
**जत्थ तत्थ हु अभावो, दोसो विज्जेदि एगंते।।463।।**

**अर्थ**–जहाँ प्रतिपत्ति का अभाव होने से अप्रतिपत्ति होती है व अभाव का निश्चय होता है वहाँ अभाव दोष होता है। यह एकांत में विद्यमान होता है।

## अप्रतिपत्ति दोष

**पडिपत्ती णादव्वा, णाणं सया जहातहं तच्चस्स।**
**अप्पडिपत्ती दोसो, विवरीदो हु पडिपत्तीए।।464।।**

**अर्थ**–तत्त्व का यथार्थ ज्ञान प्रतिपत्ति जानना चाहिए। प्रतिपत्ति से विपरीत अप्रतिपत्ति दोष है।

**अण्णाणत्तं हु वत्थु-सरूवस्स वा अजहत्थं णाणं।**
**अपडिपत्ती दोसो, णहस्स वट्टणा-हेदुत्तं।।465।।**

**अर्थ**–वस्तु स्वरूप की अज्ञानता या अयथार्थ ज्ञान अप्रतिपत्ति दोष है। जैसे आकाशद्रव्य का वर्तना हेतुत्व।

## सर्वथा असत् पक्ष में दूषण

**असदि-सव्ववत्थूइं, एगंतेणं हु जदि मण्णदे तो।**
**सयलपदत्थाणं तह, सुण्णत्त-पसंगो पप्पोदि।।466।।**

**अर्थ**–यदि कोई एकांत से सभी वस्तुओं को असत् मानता है तो सकल पदार्थों के शून्यत्व का प्रसंग प्राप्त होता है।

## सर्वथा नित्य पक्ष में दूषण

**जदि मण्णदे णिच्चा हि, होंति कूडत्था सव्वदव्वा तो।**
**तइ पज्जायाभावो, तादो गुणदव्वाभावो वि।।467।।**

**अर्थ**–यदि सर्व द्रव्यों को नित्य ही मानते हैं तो वे सभी कूटस्थ होते हैं तब पर्याय का अभाव होता है, उससे गुण व द्रव्य का भी अभाव होता है।

## सर्वथा अनित्य पक्ष में दूषण

**मण्णदि अणिच्च-दव्वो, जदि चिय दव्वाभाव-पसंगो तो।**
**पप्पोदि तादो सयल-सुण्णत्तस्स हु पसंगो अध।।468।।**

**अर्थ**–यदि द्रव्य अनित्य ही मानते हैं तो द्रव्य के अभाव का प्रसंग प्राप्त होता है फिर उससे सकल-शून्यत्व का प्रसंग प्राप्त होता है।

## सर्वथा एक पक्ष में दूषण

**सव्वदा एगपक्खे, दव्वेसुं होज्ज विसेसाभावो।**
**विसेसाभावम्मि सदि, होज्जा सामण्णाभावो वि।।469।।**

**अर्थ**–सर्वदा एक ही रूप मानने पर द्रव्यों में विशेष का अभाव होता है। विशेष का अभाव होने पर सामान्य का भी अभाव होता है।

## सर्वथा अनेक पक्ष में दूषण

**सव्वदाणेग-पक्खे, पज्जायाणं य णिराहारादो।**
**दव्वाभावो होज्जा, आहाराहेयाभावादु।।470।।**

**अर्थ**–सर्वदा अनेक पक्ष में पर्यायों का निराधार होने से तथा आधार-आधेय का अभाव होने से द्रव्य का अभाव हो जाएगा।

## सर्वथा भेद पक्ष में दूषण

**सव्वदा भेयपक्खे, को वि दव्वो होज्ज अखंडो णेव।**
**णिराहारादो हु गुण-पज्जायाण दव्वाभावो।।471।।**

**अर्थ**–सर्वदा भेद पक्ष में कोई भी द्रव्य अखंड नहीं होगा। तब गुण व पर्यायों के अभाव होने से द्रव्य का अभाव भी हो जाएगा।

## सर्वथा अभेद पक्ष में दूषण

**सया अभेयपक्खम्मि, पप्पोदि गुणपज्जायाभावो दु।**
**ताण-मभावम्मि कहं, दव्वस्स सत्ता ठिदी होज्ज।।472।।**

**अर्थ**–सदा अभेद पक्ष में गुण-पर्यायों का अभाव प्राप्त होता है। उनके अभाव में द्रव्य की सत्ता-स्थिति कैसे हो सकती है? अर्थात् नहीं हो सकती।

## सर्वथा भव्य पक्ष में दूषण

**सव्वदा भव्वपक्खे, दव्वादो दव्वंतर-पसंगो हु।**
**जम्हा परिणामी सो, सव्वसुण्णत्तस्स पप्पोदि।।473।।**

**अर्थ**–सर्वदा भव्य पक्ष में द्रव्य से द्रव्यांतर का प्रसंग प्राप्त होता है क्योंकि वह परिणामी है; जिससे सर्व शून्यत्व का प्रसंग प्राप्त होता है।

## सर्वथा अभव्य पक्ष में दूषण

**एगंतेण अभव्वो, मणणे दव्वो होज्जा कूडत्थो।**
**असंभवो पज्जायो, दव्वो णो विणा पज्जायं।।474।।**

**अर्थ**–एकांत से अभव्य मानने पर द्रव्य कूटस्थ होता है। जिससे पर्याय असंभव होगी और पर्याय के बिना द्रव्य नहीं होता।

## सर्वथा शुद्ध पक्ष में दूषण

**सव्वदा सुद्धपक्खे, जीव-पोग्गला होज्ज असुद्धा णो।**
**तादु संसारस्स पुण, अभाव-पसंगो दु पप्पोदि।।475।।**

**अर्थ**–सर्वदा शुद्ध पक्ष में जीव व पुद्गल अशुद्ध नहीं होंगे। उससे संसार के अभाव का प्रसंग प्राप्त होता है।

## सर्वथा अशुद्ध पक्ष में दूषण

**एगंतेणं असुद्ध-पक्खे दव्वाण असुद्धपसंगो।**
**उवकसदि तहा अप्पा णेव लहेज्ज णिव्वाणपुरं।।476।।**

**अर्थ**–एकांत से अशुद्ध पक्ष में द्रव्यों के अशुद्ध होने का प्रसंग प्राप्त होता है तथा आत्मा मोक्ष को प्राप्त नहीं करेगी।

## सर्वथा विभाव पक्ष में दूषण

**सया विहावपक्खम्मि, धम्मादीणं अभाव-पसंगो हु।**
**पप्पोदि य जीवो णो, कया वि लहेज्ज णियसहावं।।477।।**

**अर्थ**–सदा विभाव पक्ष में धर्म आदि के अभाव का प्रसंग प्राप्त होता है और जीव कभी भी निज स्वभाव को प्राप्त नहीं कर सकेगा।

## सर्वथा स्वभाव पक्ष में दूषण

**एगंतेणं सहाव-सरूवे मणणे जीव-पोग्गला ण।**
**होज्ज असुद्धा तादो, संसाराभाव-पसंगो हु।।478।।**

**अर्थ**–एकांत से स्वभाव स्वरूप मानने पर जीव और पुद्गल कभी अशुद्ध नहीं होंगे। उससे संसार के अभाव का प्रसंग प्राप्त होगा।

## सर्वथा चैतन्य पक्ष में दूषण

**सया चेयण्णपक्खे, पोग्गलाइ-सव्वाण चेयणत्तं।**
**होज्ज चेयणत्तादो, पोग्गलादीणं अभावो वि।।479।।**

**अर्थ**–सदा चैतन्य पक्ष में पुद्गलादि सभी को चेतनत्व होगा। उनके चेतनत्व होने से पुद्गलादि का अभाव प्राप्त होता है।

## सर्वथा अचेतन पक्ष में दूषण

**सया अचेयणपक्खे, जीवदव्वो अवि होज्जा अजीवो।**
**किण्णु असंभवो सो दु, अण्णहा हु सयल-सुण्णत्तं।।480।।**

**अर्थ**–सदा अचेतन पक्ष में जीव द्रव्य भी अजीव होगा किन्तु वह असंभव है, अन्यथा सकल-शून्यत्व होगा।

## सर्वथा मूर्तिक पक्ष में दूषण

**सया मुत्तिगपक्खम्मि, धम्मादीणं मुत्तिग-पसंगो दु।**
**जीवे मुत्तिगे होज्ज, णेव मोक्ख-ववत्था कया वि।।481।।**

**अर्थ**–सदा मूर्तिक पक्ष में धर्मादि द्रव्यों के भी मूर्तिक होने का प्रसंग प्राप्त होगा। जीव के मूर्तिक होने पर मोक्ष व्यवस्था कभी नहीं होगी।

## सर्वथा अमूर्तिक पक्ष में दूषण

**एगंतेण अमुत्तिग-पक्खे पोग्गलो अमुत्तिगो होज्ज।**
**सकम्मो वि अमुत्तिगो, तादो हु संसाराभावो।।482।।**

**अर्थ**–एकांत से अमूर्तिक पक्ष में पुद्गल अमूर्तिक होगा। कर्म सहित जीव भी अमूर्तिक होगा, उससे संसार का अभाव हो जाएगा।

## सर्वथा एक प्रदेश पक्ष में दूषण

**एय-पदेसपक्खम्मि, सव्वदा सव्व-दव्वा अकाया हु।**
**होज्जा कालोव्व एग-पदेसी असंभवो अवि सो।।483।।**

**अर्थ**–सर्वदा एक प्रदेश पक्ष में सर्व द्रव्य अकाय होंगे, काल के समान एक प्रदेशी होंगे, वह असंभव है।

## सर्वथा अनेक प्रदेश पक्ष में दूषण

**अणेगपदेसपक्खे, सया खंडा-खंडा सव्वदव्वा।**
**जीवस्साभावो तह, कालो वि होज्ज बहुपदेसी॥484॥**

**अर्थ**–सदा अनेक प्रदेश पक्ष में सभी द्रव्य खंड खंड होंगे। जिससे जीव का अभाव होगा एवं काल भी बहुप्रदेशी हो जाएगा, जो असंभव है।

## सर्वथा उपचरित पक्ष में दूषण

**एगंतेण उवचरिद-पक्खम्मि चिअ अप्पण्णत्तं णेव।**
**होज्ज सस्सद-णिच्चेसु, सिद्धेसु कया वि णियदादो॥485॥**

**अर्थ**–एकांत से उपचरित स्वभाव के पक्ष में शाश्वत नित्य सिद्धों में आत्मज्ञता नहीं होगी क्योंकि यह नियत पक्ष है।

## सर्वथा अनुपचरित पक्ष में दूषण

**अणुवचरिद-पक्खम्मि य, परण्णत्तं चिय परदंसगत्तं।**
**णो होज्ज एगंतेण, सव्वकम्महीण-सिद्धेसुं॥486॥**

**अर्थ**–एकांत से अनुपचरित पक्ष में सर्व कर्मों से हीन सिद्धों में परज्ञता व परदर्शकत्व नहीं होगा।

# XV. सुनय योजनिकाधिकार

**हवेदि अत्थि सहावो, सगचदुट्ठय-गाहगणयेणं तह।**
**परदव्वाइचदुट्ठय-गाहगेणं णत्थिसहावो।।487।।**

**अर्थ**–स्वचतुष्टय ग्राहक द्रव्यार्थिक नय से अस्ति स्वभाव होता है। परद्रव्यादि चतुष्टय ग्राहक द्रव्यार्थिक नय से नास्ति स्वभाव होता है।

**मेत्तं सत्तागाहगणयेण णिच्चसहावो य दव्वस्स।**
**उप्पादव्वयगाहगणयेण अणिच्चसहावो चिअ।।488।।**

**अर्थ**–मात्र सत्ताग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से द्रव्य का नित्यस्वभाव होता है तथा उत्पाद-व्यय ग्राहक नय से अनित्य स्वभाव होता है।

**हवेदि एगसहावो, भेदकप्पणाणिरवेक्खणयेणं दु।**
**दव्वस्स अणेगो अवि, अण्णय-दव्वत्थिगणयेणं।।489।।**

**अर्थ**–भेदकल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से एक स्वभाव होता है। अन्वय द्रव्यार्थिक नय से एक द्रव्य के अनेक स्वभाव होते हैं।

**गुणिगुणादीसुं भेय-सहावो सब्भूदववहारेणं।**
**अभेयसहावो तहा, भेदकप्पणाणिरवेक्खेण।।490।।**

**अर्थ**–सद्भूत व्यवहार नय की अपेक्षा गुण-गुणी आदि में भेद स्वभाव होता है तथा भेदकल्पना निरपेक्ष से अभेद स्वभाव होता है।

**परमभावगाहगेण, भवी भव्वपारिणामिग-सहावो।**
**णयजाणगेहिं कहिद-आगमेण जाणेज्ज इत्थं।।491।।**

**अर्थ**–परमभाव ग्राहक नय से भव्य और अभव्य पारिणामिक स्वभाव है। इस प्रकार नय के ज्ञाताओं के द्वारा कहे गए आगम से जानना चाहिए।

**जीवस्स सुद्धासुद्ध-परमभावगाहगेण चेयणो हु।**
**कम्मणोकम्माणं वि, चेयणो असब्भूदेण तह।।492।।**

**अर्थ**–शुद्धाशुद्ध परमभाव ग्राहक द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा जीव का चेतन स्वभाव है तथा असद्भूत व्यवहार उपनय की अपेक्षा कर्म नोकर्मों के भी चेतन स्वभाव है।

**कम्मणोकम्माणं च, अचेयणो परमभावगाहगेण।**
**जीवस्स वि अचेयणो, विजादि-असब्भूदणयेणं।।493।।**

**अर्थ**–परमभाव ग्राहक द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा कर्म, नोकर्म के अचेतन स्वभाव है। विजात्यसद्भूत-व्यवहार उपनय की अपेक्षा जीव के भी अचेतन स्वभाव है।

**परमभावगाहगेण मुत्तसहावो कम्मणोकम्माण।**
**जीवस्स मुत्तो तहा, असब्भूदववहारेणं वि।।494।।**

**अर्थ**–परमभाव ग्राहक नय की अपेक्षा कर्म, नोकर्म के मूर्त स्वभाव है। असद्भूत व्यवहार नय से जीव का भी मूर्त स्वभाव है।

**परमभावगाहगेण, सव्वाणं पोग्गलं विणा अमुत्तो।**
**पोग्गलस्स वि अमुत्तो, सहावो उवयारेण जाण।।495।।**

**अर्थ**–परमभाव ग्राहक द्रव्यार्थिक नय से पुद्गल के बिना सभी के अमूर्त्त स्वभाव है। उपचार से पुद्गल के भी अमूर्त्त स्वभाव जानना चाहिए।

**परमभावगाहगेण, दव्वत्थिगणयेणं मुणेदव्वो।**
**एयपदेससहावो, कालपोग्गलपरमाणूणं।।496।।**

**अर्थ**–परम भाव ग्राहक द्रव्यार्थिक नय से काल द्रव्य व पुद्गल परमाणु के एकप्रदेश स्वभाव है।

**एयपदेससहावो, धम्माधम्मगगणजीवदव्वाण।**
**अखंडादो हवेदि दु, भेयकप्पणाणिरवेक्खेण।।497।।**

**अर्थ**–भेदकल्पना निरपेक्ष द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य और जीवद्रव्य के भी अखंड होने से एकप्रदेश स्वभाव है।

**एदाण बहुपदेसो, भेयकप्पणासावेक्खेणं अवि।**
**उवयारेण वि णेयो, अणुस्स बहुपदेससहावो।।498।।**

**अर्थ**–भेदकल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा इनके अर्थात् धर्म, अधर्म, आकाश व जीव द्रव्य के बहुप्रदेश स्वभाव है उपचार से अणु का बहुप्रदेश स्वभाव जानना चाहिए।

**बहुप्पदेससहावो, कालस्स णेव उवयारेणं अवि।**
**कालदव्वम्मि णिच्चं, णिग्ध-लुक्ख-गुणाभावादो।।499।।**

**अर्थ**–कालद्रव्य में नित्य स्निग्ध व रुक्ष गुण का अभाव होने से उपचार से भी कालद्रव्य का कभी बहुप्रदेश स्वभाव नहीं होता।

**अमुत्तिग-कालाणुस्स, णेव हु उवचरिद-सहावो हवेदि।**
**पोग्गलस्स हु अमुत्तो, उवयारेण असब्भूदेण।500।।**

**अर्थ**–अमूर्तिक कालाणु के निश्चय से उपचरित स्वभाव नहीं होता। असद्भूत उपचार नय से पुद्गल का अमूर्त स्वभाव है।

**सुद्धदव्वत्थिगेणं, सव्वदव्वेसुं सहावभावो य।**
**असुद्धदव्वत्थिगेण, जीवपोग्गलेसु विहावो वि॥501॥**

**अर्थ**–शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से सभी द्रव्यों में स्वभाव भाव है और अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय से जीव व पुद्गलों में विभाव स्वभाव है।

**सुद्धदव्वत्थिगेणं, सुद्धसहावो सव्वदव्वाणं च।**
**असुद्धदव्वत्थिगेण, जीवपोग्गलाण असुद्धो वि॥502॥**

**अर्थ**–शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से सभी द्रव्यों के शुद्ध स्वभाव है। अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय से जीव व पुद्गलों के अशुद्ध स्वभाव भी है।

**जीव-पोग्गलाण होदि, उवचरिद सहावो असब्भूदेण।**
**अण्ण-दव्वेसु कया वि, उवचरिदो दु संभवो णत्थि॥503॥**

**अर्थ**–असद्भूत व्यवहार नय से जीव व पुद्गलों के उपचरित स्वभाव होता है। अन्य द्रव्यों में कभी भी उपचरित स्वभाव संभव नहीं है।

**तच्चं णादुं कंखी, कंखंति जे दु सगप्प-कल्लाणं।**
**ते दु सुणययोजणिगं, पढेज्जा सण्णाणस्स सया॥504॥**

**अर्थ**–तत्त्व को जानने के आकांक्षी जो स्वात्म कल्याण की आकांक्षा करते हैं, वे सम्यग्ज्ञान के लिए सदा सुनय योजनिका पढ़ें।

# XVI. चूलिकाधिकार

## सर्वज्ञ वचन प्रमाण

**सव्वण्हू गदरायी, सवरहिदेसी लोयपुज्जारिहा।**
**ताणं दिव्वज्झुणी हु, पमाणरूव-सव्ववयणाणि॥505॥**

**अर्थ**–सर्वज्ञ, वीतरागी और स्वपर हितैषी लोकपूज्य अरिहंत हैं। निश्चय से उनकी दिव्यध्वनि रूप सर्व वचन प्रमाण हैं।

## गणधर वचन भी प्रमाणिक

**जिणाणुसारेण वदंति, चउणाणधारग-इड्ढिजुत्ता जे।**
**गणहरा जगपुज्जा हु, पमाणिय-वयणाइं ताणं॥506॥**

**अर्थ**–जिनेंद्र भगवान् के अनुसार बोलने वाले, चार ज्ञान के धारक, ऋद्धियुक्त और जगद्पूज्य गणधर देव के वचन प्रमाणिक हैं।

## परीक्षण से वचन प्रमाणिक

**जिणाणुसारेण वददि, जो पमाणिय-वयणाणि होंति तस्स।**
**पमाण-णयेहिं च सग-वयणाणं परिक्खणं कट्टु॥507॥**

**अर्थ**–जो प्रमाण व नय से स्ववचनों का परीक्षण करके जिनेन्द्र भगवान् के अनुसार बोलते हैं उनके वचन प्रमाणिक होते हैं।

## आगमानुसार वचन प्रमाणिक

**दव्वस्स गुणसहावं, जे के वि वाया वदंति समयेण।**
**ताण पमाण-रूवाणि, अणुवीचि-वयणाणि चिय ताणि॥508॥**

**अर्थ**–जो कोई भी वक्ता आगमानुसार द्रव्य के गुण व स्वभाव को कहते हैं उनके वे अनुवीची वचन प्रमाण रूप हैं।

## श्रुतज्ञान धर्माधार

**सायरोव्व सुदणाणं, तित्थयर-झुणी मेहोव्व मण्णेज्ज।**
**कूवोव्व साहुवाणी, ताणमभावे उसाभावो॥509॥**

**अर्थ**–श्रुतज्ञान सागर के समान, तीर्थंकर की ध्वनि मेघ के समान और साधु की वाणी कूप के समान मानी जाती है। उनके अभाव में धर्म का अभाव हो जाता है।

## श्रुत वृद्धि से सम्यक्त्वादि वृद्धि

**जह-जह चंदकला खलु, वड्ढेदि तह-तह सायर-णीरं वि।**
**सण्णाणं चरित्तं वि, सम्मसुदविड्ढीए तहेव॥510।**

**अर्थ**–जैसे-जैसे चंद्रमा की कला बढ़ती है वैसे-वैसे समुद्र का जल भी बढ़ता है। उसी प्रकार जैसे-जैसे सम्यक् श्रुत की वृद्धि होती है वैसे-वैसे सम्यग्ज्ञान व चारित्र भी बढ़ता है।

## श्रुताभाव में धर्म संभव नहीं

**जहपाणवाउं विणा, जीवणं ण संभवो संसारीण।**
**तह सावय-समणाणं, धम्मो सम्म-सुदाभावम्मि॥511॥**

**अर्थ**–जैसे प्राणवायु के बिना संसारी जीवों का जीवन संभव नहीं है वैसे ही सम्यक् श्रुत के अभाव में श्रमण धर्म व श्रावक धर्म संभव नहीं है।

## श्रुत व साधु के बिना जिनशासन नहीं

**जह अणलस्स अभावो, अणलुप्पायगहेदुस्स अभावे।**
**तत्थ जिणसासणस्स य, तह अभावे जिण-सुद-मुणीण॥512॥**

**अर्थ**–जैसे अग्नि उत्पादक हेतु के अभाव में अग्नि का अभाव होता है वैसे ही जिनश्रुत व मुनियों के अभाव में उस क्षेत्र व काल में जिन शासन का अभाव होता है।

## श्रद्धा से हितमार्ग

**जेत्तिय-सम्मचरित्तं, सब्भावो अवि तेत्तिय-सुदणाणं।**
**जावइय-सम्मसद्धा, वड्ढदि तावइय-हिदमग्गो॥513॥**

**अर्थ**–जितना सम्यक् चारित्र होता है उतना श्रुतज्ञान का भी सद्भाव होता है। जितनी सम्यक् श्रद्धा वृद्धिंगत होती है उतना हितमार्ग वृद्धिंगत होता है।

## शास्त्र संरक्षण

**सत्थणासादो होदि, धम्मणासो जिणसासणस्स तादु।**
**तम्हा सम्म-सत्थाणि, रक्खेज्जा सम्मजदणेणं।।514।।**

**अर्थ**–शास्त्रों का नाश होने से धर्म का नाश होता है, उससे जिनशासन का विनाश होता है इसलिए सम्यक् यत्न से सम्यक् शास्त्रों की रक्षा करनी चाहिए।

## श्रुतज्ञान से धर्म संवर्द्धन

**सुदं सया सुदणाणी, वड्ढेज्जा सम्मजदणेणं जं हु।**
**धम्मो वड्ढदि णियमा, सुदणाण-णाणीण विड्ढीइ।।515।।**

**अर्थ**–सदा श्रुत व श्रुतज्ञानी का वर्धन करना चाहिए क्योंकि श्रुतज्ञान व ज्ञानियों की वृद्धि से धर्म नियम से वृद्धिंगत होता है।

## श्रुत संयम-हेतु

**सुदं संजम-कारणं, हवदि संजमो सुहज्झाण-हेदू।**
**झाणादो संवर-णिज्जरा ते मोक्ख-हेदू तहा।।516।।**

**अर्थ**–श्रुत, संयम का कारण होता है। संयम शुभ ध्यान का हेतु है। ध्यान से संवर व निर्जरा होती है तथा ये सब मोक्ष का हेतु हैं।

## जिनसम जिनग्रंथ व साधु

**जिणोव्व जिणगंथा इह, दुस्समे मण्णेज्ज जिणाभावम्मि।**
**तित्थयराभावे तह, साहू पुज्जेज्ज तिजोगेहि॥517॥**

**अर्थ**–इस दुषमा काल में जिनेंद्र प्रभु के अभाव में जिनग्रंथ जिन के समान मानने चाहिए तथा तीर्थंकर के अभाव में तीनों योगों के द्वारा साधुओं को पूजना चाहिए।

## सम्यग्ज्ञान महत्ता

**अक्काइजोदिसगिहा, विणा णो णस्सदि जह लोयतिमिरं।**
**सण्णाणक्केण विणा, णो तह अण्णाणंधयारं॥518॥**

**अर्थ**–जैसे सूर्यादि ज्योतिष ग्रहों के बिना लोक का तिमिर नष्ट नहीं होता, वैसे ही सम्यग्ज्ञान रूपी सूर्य के बिना अज्ञान रूपी अंधकार नष्ट नहीं होता।

## रत्नत्रय युक्त मोक्षमार्ग

**मूलतणासाहा-जुद-रुक्खो अवयच्छदि संसारे जह।**
**सम्म-रयणत्तयेणं, सह मोक्खमग्गो तह णियमा॥519॥**

**अर्थ**–जैसे संसार में जड़, तना और शाखा से युक्त वृक्ष देखा जाता है वैसे सम्यक् रत्नत्रय से युक्त नियम से मोक्षमार्ग होता है।

## रत्नत्रय का सार व महासार

**रुक्खसारो हु पुप्फं, महासारो जह इट्ठमिट्ठफलं।**
**तह रयणत्तयसारो, भवसुहं महासारो सिवो॥520॥**

**अर्थ**–जैसे वृक्ष का सार पुष्प तथा महासार इष्ट-मिष्ट फल हैं, वैसे ही रत्नत्रय का सार भवसुख व महासार मोक्ष है।

## रत्नत्रयहीन का वचन प्रमाण नहीं

**अणुदिददिवायरस्स ण, अभावे गहत्थी संभवो तस्स।**
**वयणं णेव पमाणं, हवेदि रयणत्तयहीणस्स॥521॥**

**अर्थ**–जैसे अनुदित सूर्य के अभाव में उसकी किरण संभव नहीं है, उसी प्रकार रत्नत्रय से हीन का वचन कभी प्रमाण नहीं होता।

## रत्नत्रय हीन के नीरस वचन

**सज्जणा आइक्खंति, इट्ठमिट्ठसिट्ठवयणाइं किण्णु।**
**रयणत्तयहीणादु ण, सोहंति अलवण-भोयणं व॥522॥**

**अर्थ**–सज्जन इष्ट-मिष्ट-शिष्ट वचनों को बोलते हैं किन्तु वे रत्नत्रय हीन होने से नमक से रहित भोजन के समान नहीं शोभते।

## रत्नत्रय से युक्त के वचन प्रमाण

**सम्मत्तणाणचरित्त-जुदा होंति तवस्सि-पंडिद-णाणी।**
**जोगी झाणी हु तहा, ताणमेव वयणं पमाणं।।523।।**

**अर्थ**–सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक् चारित्र से युक्त ही तपस्वी, पंडित, ज्ञानी, योगी तथा ध्यानी हैं, उनके ही वचन प्रमाण हैं।

## मात्र शब्दज्ञानी का कल्याण नहीं

**अंधो पंगू मूढो, डज्झंति जह तह डज्झमाण-वणे।**
**रयणत्तयहीण-सद्दणाणी बुड्डंति संसारे।।524।।**

**अर्थ**–जैसे अंधा, पंगु व मूर्ख जलते हुए वन में जलते हैं वैसे ही रत्नत्रय से हीन शब्दज्ञानी संसार में डूबते हैं।

## स्याद्वाद अनेकांतमय वचन प्रमाण

**जोदिसीसु चंदक्को, जह जिणसासणे तह सिआवाओ।**
**अणेगंतो खलु तस्स, पमाणं चिय पोसगवयणं।।525।।**

**अर्थ**–जैसे ज्योतिष देवों में सूर्य व चंद्रमा होते हैं वैसे ही जिनशासन में स्याद्वाद और अनेकांत है। उसके पोषक वचन ही प्रमाण हैं।

## नय-प्रमाण से कर्म नाश

**महाजोद्धा विणस्सदि, जह सत्तुणो तिक्ख-असि-पहारेण।**
**णयधाराजुद-पमाण-असिणा जोगी तहण्णाणं।।526।।**

**अर्थ**–जैसे महायोद्धा तीक्ष्ण असि प्रहार से शत्रुओं को नष्ट करता है, वैसे ही नय रूपी धार से युक्त प्रमाण की तलवार के द्वारा योगी अज्ञान नष्ट करते हैं।

## रत्नत्रय युक्त ही मोक्षमार्गी

**पज्जलिदेगदीवो वि, अंधयार-णासगो होदि णियमा।**
**बहु-अप्पज्जलिदा अवि, जह तमं णासिदु-मसमत्था।।527।।**
**तह रयणत्तय-जुत्तो, हीण-संहणण-जुदो वि सिवमग्गी।**
**सोक्किट्ठ-संहणणो वि, रयणत्तयहीण-भवमग्गी।।528।।**

**अर्थ**–जैसे जलता हुआ एक दीपक भी नियम से अंधकार का नाशक होता है व बहुत से बुझे हुए दीप भी अंधकार का नाश करने में असमर्थ होते हैं वैसे ही रत्नत्रय से युक्त हीन संहनन युक्त भी मोक्षमार्गी होते हैं और रत्नत्रय से हीन उत्कृष्ट संहनन युक्त भी संसारमार्गी होते हैं।

## सम्यग्ज्ञान हीन श्रुत मिथ्या

**हवेदि मिच्छा णियमा, सण्णाण-विहीणो हु बहुसुदो अवि।**
**विज्जुदहीणं विज्जुद-उवयरणं संचालिदं णो॥529॥**

**अर्थ**–सम्यग्ज्ञान से हीन बहुत श्रुत भी नियम से मिथ्या होता है। जैसे– विद्युत से हीन विद्युत उपकरण संचालित नहीं होता।

## जिनशासनाश्रय

**जो को अवि आसयेदि, अणाइणिहण-जिणसासणे भव्वो।**
**सो हु लहदि णिव्वाणं, जिणागमे णो संकणीयो॥530॥**

**अर्थ**–जो कोई भी भव्य अनादिनिधन जिनशासन का आश्रय लेता है वह निर्वाण को प्राप्त करता है। जिनागम में शंका नहीं करनी चाहिए।

## दुर्नय नाशक

**वाहिणीव अणेगंत-धम्मो सिआवाओ सुदंसणोव्व।**
**वयणपमाणत्त-णिवो, दुण्णय-रिउ-णासिदुं सक्को॥531॥**

**अर्थ**–सेना के समान अनेकांत धर्म, सुदर्शन चक्र के समान स्याद्वाद व वचनप्रमाणत्व रूपी राजा, दुर्नय रूपी शत्रु का नाश करने में समर्थ हैं।

## अंतिम मंगलाचरण

**उसहादो वीरंतं, वट्टमाण-तित्थयर-परंपराइ।**
**इदंभूदि-पहुदीदो, जंबूसामि-पज्जंतं हं।।532।।**
**विण्हुं णंदिमित्त-मवराजिदं-गोवड्ढण-भद्दबाहू।**
**पंचसुदकेवली पुण, परंपरागदण्णाइरिया।।533।।**
**धरसेण-कोंडकुंडा, जदिउसहमुमासामिं समंतं च।**
**सिवकोडिं पुज्जपाद-मकलंक-विज्जाणंदि-मुणी।।534।।**
**जिणसेणं रविसेणं, वीरसेणं णेमिचंदं सूरिं।**
**माणतुंगममियचंद-जयसोमसेण-सुहचंदा य।।535।।**
**अस्सिं परंपराए, सूरि-संतिसायरं पायसिंधुं।**
**जयकित्तिं तह भारद-गोरव-देसभूसण-सूरिं।।536।।**
**तस्स सुजोग्गं सिस्सं, विज्जाणंदलीण-विज्जाणंदं।**
**जेट्ठ-सेट्ठाइरियं हु, रट्ठसंत-सिद्धंतचक्किं।।537।।**
**पणमामि कोडिकोडी, भत्तिरायेण भाव-विसुद्धीए।**
**सव्वकम्मक्खयत्थं, भत्तीव ण अण्ण-हेदू जं।।538।।**

**अर्थ**–वर्तमान तीर्थंकर परंपरा में श्री ऋषभदेव से श्री महावीर स्वामी तक, इंद्रभूति आदि से श्री जंबूस्वामी पर्यंत भगवंतों को, श्री विष्णु, श्री नंदिमित्र, श्री अपराजित, श्री गोवर्द्धन और श्री भद्रबाहु पंचश्रुत केवलियों को पुनः परंपरागत आचार्य श्री धरसेन स्वामी, श्री कुंदकुंद स्वामी, श्री यतिवृषभ स्वामी, श्री उमास्वामी, श्री समंतभद्र स्वामी, श्री शिवकोटि, श्री पूज्यपाद स्वामी, श्री अकलंकदेव स्वामी, श्री विद्यानंदी स्वामी, श्री जिनसेन स्वामी, श्री रविषेण स्वामी, श्री

नेमिचंद्राचार्य, श्री मानतुंग स्वामी, श्री अमृतचंद्र स्वामी, श्री जयसेन स्वामी, श्री सोमसेन स्वामी व श्री शुभचन्द्र स्वामी तथा इस परंपरा में आचार्य श्री शांतिसागर जी, आचार्य श्री पायसागर जी, आचार्य श्री जयकीर्ति जी, भारत गौरव आचार्य श्री देशभूषण जी, उनके सुयोग्य शिष्य विद्या के आनंद में लीन ज्येष्ठ व श्रेष्ठाचार्य राष्ट्र संत सिद्धांतचक्रवर्ती श्री विद्यानंद जी मुनिराज को भावविशुद्धि से, भक्ति के अनुराग से और सर्व कर्म क्षय के लिए कोटि-कोटि प्रणाम करता हूँ क्योंकि भक्ति के समान (कर्म क्षय का) अन्य हेतु नहीं है।

**ताण सव्वाइरियाण, किवादिट्ठीइ रइदमिदं सत्थं।**
**मए सूरि-अप्पणाणि-वसुणंदि-गुरुचरण-भमरेण॥539॥**

**अर्थ**–उन सभी आचार्यों की कृपादृष्टि से मुझ अल्पज्ञानी, गुरु चरण भ्रमर आचार्य वसुनंदी के द्वारा यह शास्त्र लिखा गया।

## *शाश्वत शरण*

**जिणसासणं हु सस्सद-सरणं सया होज्ज भवे-भवे मे।**
**पाणोव्व जिणधम्मो दु, सिद्धत्तं सस्सदं लक्खं॥540॥**

**अर्थ**–जिनशासन ही शाश्वत शरण है। वह भव-भव में मेरे लिए सदा होवे। जिनधर्म प्राण के समान है और सिद्धत्व मेरा शाश्वत लक्ष्य है।

## ग्रंथकार की लघुता

**जिणदेवो जिणसत्थं, आइरियुवज्झाय-महासाहू य।**
**खमंतु मे सव्वाणं, विणयेण सह खम्मामि सया॥541॥**

**अर्थ**–जिनदेव, जिनशास्त्र, आचार्य, उपाध्याय और महासाधु सदा मुझे क्षमा करें, मैं विनय सहित सभी से क्षमा माँगता हूँ।

## ग्रंथ प्रशस्ति

**परमेट्ठि-आराहणा-लद्धि-गगण-वीरणिव्वाणद्धम्मि।**
**भद्दपद-सिद-तिय-जया-उत्तराफग्गुणे-सुजोगे॥542॥**
**जंबूसामि-अणुबद्ध-केवलिस्स तवो-भूमि-सुहठाणे।**
**मुणिसुव्वय-जिणालये, गंथो पुण्णो भविहिदत्थं॥543॥**

**अर्थ**–परमेष्ठी (5), आराधना (4), लब्धि (5), आकाश (2) 'अंकानां वामतो गतिः' से 2545 वीरनिर्वाण संवत् भाद्रपद शुक्ल जया तिथि तृतीया, उत्तराफाल्गुनि नक्षत्र शुभ योग में श्री जंबूस्वामी तपोस्थली बौलखेड़ा भरतपुर राजस्थान शुभ स्थान पर मुनिसुव्रतनाथ जिनालय में भव्यों के हित के लिये यह ग्रंथ पूर्ण हुआ।

# परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री 108

# वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा

## रचित व संपादित साहित्य

### मौलिक कृतियाँ

### प्राकृत साहित्य

1. प्राकृत वाणी भाग-1, 2, 3
2. अहिंसगाहारो ( अहिंसक आहार )
3. अज्ज-सक्किदी ( आर्य संस्कृति )
4. अणुवेक्खा-सारो ( अनुप्रेक्षा सार )
5. जिणवर-थोत्तं ( जिनवर स्तोत्र )
6. जदि-किदि-कम्मं ( यति कृतिकर्म )
7. णंदिणंद-सुत्तं ( नंदीनंद सूत्र )
8. णिग्गंथ-थुदी ( निर्ग्रन्थ स्तुति )
9. तच्चसारो ( तत्त्व सार )
10. धम्म-सुत्तं ( धर्म सूत्र )
11. रट्ठ-संति-महाजण्णो ( राष्ट्र शांति महायज्ञ )
12. सुद्धप्पा ( शुद्धात्मा )
13. अप्पणिब्भर भारदो ( आत्मनिर्भर भारत )
14. विज्जा-वसु-सावयायारो ( विद्या वसु श्रावकाचार )
15. अप्प-विहवो ( आत्म वैभव )
16. अट्ठंग जोगो ( अष्टांग योग )
17. णमोयार महप्पुरो ( णमोकार माहात्म्य )
18. मूल-वण्णो ( मूल वर्ण )
19. मंगल-सुत्तं ( मंगल सूत्र )
20. विस्स-धम्मो ( विश्व धर्म )
21. विस्स-पुज्जो-दियंबरो ( विश्व पूज्य दिगम्बर )
22. समवसरण सोहा ( समवशरण शोभा )
23. वयण-पमाणत्तं ( वचन प्रमाणत्व )
24. अप्पसत्ती ( आत्म शक्ति )
25. कला-विण्णाणं ( कला विज्ञान )
26. को विवेगी ( विवेकी कौन )
27. पुण्णासव-णिलयो ( पुण्यास्रव निलय )
28. तित्थयर-णामत्थुदी ( तीर्थंकर नाम स्तुति )
29. रयणकंडो ( सूक्ति कोश )
30. धम्म-सुत्ति-संगहो ( धर्म सूक्ति संग्रह )
31. कम्म-सहावो ( कर्म स्वभाव )
32. खवगराय सिरोमणी ( क्षपकराज शिरोमणि )
33. सिरि सीयलणाह चरियं ( श्री शीतलनाथ चरित्र )
34. अज्झप्प-सुत्ताणि ( अध्यात्म सूत्र )
35. समणायारो ( श्रमणाचार )

### भावार्थ

1. अज्ज-सक्किदी ( आर्य संस्कृति )
2. णिग्गंथ-थुदि ( निर्ग्रंथ स्तुति )
3. तच्च-सारो ( तत्त्वसार )
4. रट्ठसंति-महाजण्णो ( राष्ट्रशांति महायज्ञ )
5. णंदिणंद-सुत्तं ( नंदीनंद सूत्र )

### टीका ग्रंथ

1. प्रमेया टीका-रत्नमाला ( संस्कृत )
2. वसुधा टीका-द्रव्यसंग्रह ( संस्कृत )
3. नय प्रबोधिनी-आलाप पद्धति ( हिंदी )

## इंग्लिश साहित्य

Inspirational Tales Part- 1 & 2

## वाचना साहित्य

1. मुक्ति का वाग्दान ( इष्टोपदेश )
2. बोधि वृक्ष ( प्रश्नोत्तर रत्नमालिका )
3. शिवपथ का रथ ( सामायिक पाठ )
4. स्वात्मोपलब्धि ( समाधि तंत्र )

## प्रवचन साहित्य

1. आईना मेरे देश का
2. उत्तम क्षमा धर्म ( आत्मा का ए.सी. रूम )
3. उत्तम आर्जव धर्म ( रंचक दगा बहुत दु:खदानी )
4. उत्तम मार्दव धर्म ( मान महाविष रूप )
5. उत्तम शौच धर्म ( लोभ पाप का बाप बखाना )
6. उत्तम सत्य धर्म ( सतवादी जग में सुखी )
7. उत्तम संयम धर्म ( जिस बिना नहिं जिनराज सीझे )
8. उत्तम तप धर्म ( तप चाहे सुरराय )
9. उत्तम त्याग धर्म ( निज हाथ दीजे साथ लीजे )
10. उत्तम आकिंचन धर्म ( परिग्रह चिंता दु:ख ही मानो )
11. उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म ( चेतना का भोग )
12. खुशी के आँसू
13. खोज क्यों रोज-रोज
14. गुरुत्तं भाग 1-15
15. चूको मत
16. जय बजरंगबली
17. जीवन का सहारा
18. ठहरो! ऐसे चलो
19. तैयारी जीत की
20. दशामृत
21. धर्म की महिमा
22. ना मिटना बुरा है न पिटना
23. नारी का धवल पक्ष
24. शायद यही सच है
25. श्रुत निर्झरी
26. सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य की शौर्य गाथा
27. सीप का मोती ( महावीर जयंती )
28. स्वाती की बूँद

## हिंदी गद्य रचना

1. अन्तर्यात्रा
2. अच्छी बातें
3. आज का निर्णय
4. आ जाओ प्रकृति की गोद में
5. आधुनिक समस्यायें प्रमाणिक समाधान
6. आहारदान
7. एक हजार आठ
8. कलम पट्टी बुद्धिका
9. गागर में सागर
10. गुरु कृपा
11. गुरुवर तेरा साथ
12. जिन सिद्धांत महोदधि
13. डॉक्टरों से मुक्ति
14. दान के अचिन्त्य प्रभाव
15. धर्म बोध संस्कार ( भाग 1-4 )
16. धर्म संस्कार ( भाग 1-2 )
17. निज अवलोकन
18. वसु विचार
19. वसुनन्दी उवाच
20. मीठे प्रवचन ( भाग 1-6 )
21. रोहिणी व्रत कथा
22. स्वप्न विचार
23. सद्गुरु की सीख
24. सफलता के सूत्र
25. सर्वोदयी नैतिक धर्म
26. संस्कारादित्य
27. हमारे आदर्श

## हिंदी काव्य रचना

1. अक्षरातीत
2. कल्याणी
3. चैन की जिंदगी
4. ना मैं चुप हूँ ना गाता हूँ
5. मुक्ति दूत के मुक्तक
6. हाइकू
7. हीरों का खजाना

## विधान रचना

1. कल्याण मंदिर विधान
2. कलिकुण्ड पार्श्वनाथ विधान
3. चौसठऋद्धि विधान
4. णमोकार महार्चना
5. दु:खों से मुक्ति ( बृहद् सहस्रनाम महार्चना )
6. यागमंडल विधान
7. समवशरण महार्चना
8. श्री नंदीश्वर विधान
9. श्री सम्मेदशिखर विधान
10. श्री अजितनाथ विधान
11. श्री संभवनाथ विधान
12. श्री पद्मप्रभ विधान
13. श्री चंद्रप्रभ विधान ( देहरा तिजारा )
14. श्री चंद्रप्रभ विधान
15. श्री पुष्पदंत विधान
16. श्री शांतिनाथ विधान
17. श्री मुनिसुव्रतनाथ विधान
18. श्री नेमिनाथ विधान
19. श्री महावीर विधान
20. श्री जम्बूस्वामी विधान
21. श्री भक्तामर विधान
22. श्री सर्वतोभद्र महार्चना

## संपादित कृतियाँ ( संस्कृत प्राकृत साहित्य

1. आराधना सार ( श्रीमदेवसेनाचार्य जी )
2. आराधना समुच्चय ( श्री रविचन्द्राचार्य जी )
3. आध्यात्म तरंगिणी ( आचार्य सोमदेव सूरी जी )
4. कर्म विपाक ( आ. श्री सकलकीर्ति जी )
5. कर्म प्रकृति ( सिद्धांत चक्रवर्ती आ. श्री अभयचंद्र जी )
6. गुणरत्नाकर ( रत्नकरण्ड श्रावकाचार ) ( आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी )
7. चार श्रावकाचार संग्रह
8. जिनकल्पि सूत्र ( श्री प्रभाचंद्राचार्य जी )
9. जिन श्रमण भारती ( संकलन-भक्ति, स्तुति, ग्रंथादि )
10. जिन सहस्रनाम स्त्रोत
11. तत्त्वार्थ सार ( श्री मदमृताचन्द्राचार्य सूरि )
12. तत्त्वार्थस्य संसिद्धि
13. तत्त्वार्थ सूत्र ( आ. श्री उमास्वामी जी )
14. तत्त्वज्ञान तरंगिणी ( श्री मद्भट्टारक ज्ञानभूषण जी )
15. तच्च वियारो सारो ( आ. श्री वसुनंदी जी )
16. तत्व भावना ( आ. श्री अमितगति जी )
17. धर्म रत्नाकर ( श्री जयसेनाचार्य जी )
18. धम्म रसायण ( आ. श्री पद्मनंदी स्वामी जी )
19. ध्यान सूत्राणि ( श्री माघनंदी सूरी )
20. नीतिसार समुच्चय ( आ. श्री इंद्रनंदी स्वामी जी )
21. पंच विंशतिका ( आ. श्री पद्मनंदी जी )
22. प्रकृति समुत्कीर्तन ( सिद्धांत चक्रवर्ती श्री नेमीचंद्राचार्य जी )
23 पंचरत्न
24. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय ( आ. श्री अमृतचंद्र स्वामी जी )
25. मरणकण्डिका ( आ. श्री अमितगति जी )
26. भगवती आराधना ( आ. श्री शिवकोटी जी स्वामी )
27. भावत्रयफलप्रदर्शी ( आ. श्री कुंथुसागर जी )
28. मूलाचार प्रदीप ( आ. श्री सकलकीर्ति स्वामी जी )
29. योगामृत ( भाग 1-2 ) ( मुनि श्रीबालचंद्र जी )
30. योगसार ( भाग 1, 2 ) ( मुनि श्री बालचंद्र जी )
31. रयणसार ( आ. श्री कुंदकुंद स्वामी )
32. वसुऋद्धि
    - रत्नमाला ( आ. श्री शिवकोटि स्वामी जी )
    - पूज्यपाद श्रावकाचार ( आ. श्री पूज्यपाद जी )
    - लघु द्रव्य संग्रह ( आ. श्री नेमीचंद्र स्वामी जी )
    - अर्हत प्रवचनम् ( आ. श्री प्रभाचंद्र स्वामी जी )
    - स्वरूप संबोधन ( आ. श्री अकलंक देव जी )
    - इष्टोपदेश ( आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी )
    - वैराग्यमणि माला ( आ. श्री विशाल कीर्ति जी )
    - ज्ञानांकुश ( आ. श्री योगीन्द्र देव )
33. सुभाषित रत्न संदोह ( आ. श्री अमितगति स्वामी जी )
34. सिन्दूर प्रकरण ( आ. श्री सोमदेव स्वामी जी )
35. समाधि तंत्र ( आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी )
36. समाधि सार ( आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी )
37. सार समुच्चय ( आ. श्री कुलभद्र स्वामी जी )
38. विषापहार स्तोत्र ( महाकवि धनंजय जी )

## प्रथमानुयोग साहित्य

1. अमरसेन चरित्र ( कविवर माणिक्कराज जी )
2. आराधना कथा कोष ( ब्र. श्री नेमीदत्त जी ) ( भाग 1-2-3 )
3. करकण्डु चरित्र ( मुनि श्री कनकामर जी )
4. कोटिभट श्रीपाल चरित्र ( आ. श्री सकलकीर्ति जी )
5. गौतम स्वामी चारित्र ( मण्डलाचार्य श्री धर्मचंद्र जी )
6. चारूदत्त चरित्र ( ब्र. श्री नेमीदत्त जी )
7. चित्रसेन पद्मावती चरित्र ( पं. पूर्णमल्ल जी )
8. चेलना चारित्र
9. चंद्रप्रभ चरित्र
10. चौबीसी पुराण
11. जिनदत्त चरित्र ( कविवर ब्रह्मराय )
12. त्रिवेणी ( संग्रह ग्रंथ )
13. देशभूषण कुलभूषण चरित्र
14. धर्मामृत ( भाग 1-2 ) ( श्री नयसेनाचार्य जी )
15. धन्यकुमार चरित्र ( आ. श्री सकलकीर्ति जी )
16. नागकुमार चरित्र ( आ. श्री मल्लिषेण जी )
17. नंगानंग कुमार चरित्र ( श्रीमान् देवदत्त )
18. प्रभंजन चरित्र ( कविवर ब्रह्मराय )
19. पाण्डव पुराण ( श्री मदाचार्य शुभचंद्र देव )
20. पार्श्वनाथ पुराण ( आ. श्री सकलकीर्ति जी )
21. पुण्याश्रव कथा कोष ( भाग 1-2 ) ( श्री रामचंद्र मुमुक्षु )
22. पुराण सार संग्रह ( भाग 1-2 ) ( आ. श्री दामनंदी जी )
23. भरतेश वैभव ( कवि रत्नाकर )
24. भद्रबाहु चरित्र
25. मल्लिनाथ पुराण ( आ. श्री सकलकीर्ति जी )
26. महीपाल चरित्र ( कविवर श्री चारित्र भूषण )
27. महापुराण ( भाग 1-2 )
28. महावीर पुराण ( आ. श्री सकलकीर्ति जी )
29. मौनव्रत कथा ( आ. श्री श्रीचंद्र स्वामी जी )
30. यशोधर चरित्र
31. रामचरित्र ( भाग 1-2 ) ( आ. श्री सोमदेव स्वामी )
32. रोहिणी व्रत कथा
33. व्रत कथा संग्रह
34. वरांग चरित्र ( आ. श्री जटासिंह नंदी )
35. विमलनाथ पुराण ( श्री ब्रह्मचारीश्वर कृष्णदास जी )
36. वीर वर्धमान चरित्र
37. श्रेणिक चरित्र
38. श्रीपाल चरित्र ( आ. श्री सकलकीर्ति जी )
39. श्री जम्बूस्वामी जी चरित्र ( श्री वीर कवि )
40. शांतिनाथ पुराण ( भाग 1-2 ) ( कवि असग जी )
41. सप्तव्यसन चरित्र ( आ. श्री सोमकीर्ति भट्टारक )
42. सम्यक्त्व कौमुदी
43. सती मनोरमा
44. सीता चरित्र ( श्री दयाचंद गोलीय )
45. सुरसुंदरी चरित्र
46. सुलोचना चरित्र
47. सुकुमाल चरित्र
48. सुशीला उपन्यास
49. सुदर्शन चरित्र ( पं. गोपालदास बैरया )
50. सुभौम चरित्र
51. हनुमान चरित्र
52. क्षत्र चूड़ामणि ( जीवंधर चरित्र )

## संपादित हिंदी साहित्य

1. अरिष्ट निवारक त्रय विधान
   - नवग्रह विधान
   - वास्तु निवारण
   - मृत्युंजय ( पं. आशाधर जी कृत )
2. श्री जिनसहस्त्रनाम एवं पंचपरमेष्ठी विधान
3. श्री जिनसहस्त्रानाम विधान ( लघु ) आदि एक नाम अनेक
4. शाश्वत शांतिनाथ ऋद्धि विधान
   - भक्तामर विधान ( आ. मानतुंग स्वामी जी ( मूल ) )
   - शांतिनाथ विधान ( पं. ताराचंद्र जी )
   - सम्मेदशिखर विधान ( पं. जवाहर दास जी )
5. कुरल काव्य ( संत तिरुवल्लुवर )
6. तत्त्वोपदेश ( छहढ़ाला ) ( पुं. प्रवर दौलतराम जी )
7. दिव्य लक्ष्य ( संकलन-हिंदी पाठ, स्तुति आदि )
8. धर्म प्रश्नोत्तर ( आ. श्री सकलकीर्ति जी )
9. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार ( आ. श्री सकलकीर्ति जी )
10. भक्तिसागर ( चौबीसी चालीसा संग्रह )
11. विद्यानंद उवाच ( आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज )
12. सुख का सागर ( चौबीसी चालीसा )
13. संसार का अंत
14. स्वास्थ्य बोधामृत

## गुरु पद विनयांजली साहित्य

1. अक्षर शिल्पी ( मुनि शिवानंद )
2. पगवंदन ( मुनि शिवानंद प्रशमानंद )
3. वसुनंदी प्रश्नोत्तरी ( मुनि जिनानंद, ऐ. विज्ञान सागर )
4. दृष्टि दृश्यों के पार ( आ. श्री वर्धस्वनंदनी, वर्चस्वनंदनी )
5. स्मृति पटल से भाग 1-2 ( आ. श्री वर्धस्वनंदनी )
6. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी ( ऐलक विज्ञान सागर )
7. गुरु आस्था ( ऐलक विज्ञान सागर )
8. परिचय के गवाक्ष में ( ऐलक विज्ञान सागर )
9. स्वर्णोदय ( ऐलक विज्ञान सागर )
10. स्वर्ण जन्मजयंती महोत्सव ( ऐलक विज्ञान सागर )
11. हस्ताक्षर ( ऐलक विज्ञान सागर )
12. वसु सुबंध ( महाकाव्य ) ( प्रो. डॉ. उदयचंद्र जी जैन )
13. समझाया रविन्दु न माना ( सचिन जैन 'निकुंज' )